2·1

विनोबा की बोध-कथाएं

१. द-दमन-दान-दया

प्रजापति की तीन प्रकार की प्रजा थी—देवता, मनुष्य और असुर। तीनों अपने पिता प्रजापति को गुरु मानकर उन्हींके घर ब्रह्मचर्य से रहने लगे। अध्ययन पूर्ण होने के बाद देवता प्रजापति के पास जाकर कहने लगे, "हमें कोई मंत्र दीजिए।"

प्रजापति बोला, "द।" फिर प्रजापति ने उनसे पूछा, "तुम कुछ समझे ?"

देवता बोले, "समझ गए। दमन करो, यही आपने कहा न ?"

"ठीक, तुमने सही समझा।"

उनके बाद प्रजापति से मनुष्यों ने मंत्र मांगा। प्रजापति ने उन्हें भी 'द' मंत्र दिया।

"तुम क्या समझे ?"

"समझ गए। दान को, यही आपने कहा न ?"

"ठीक, तुमने सही समझा।"

आखिर में असुरों ने मंत्र मांगा। उन्हें भी वही मंत्र मिला—'द।'

"तुम क्या समझे ?"

"समझ गए। दया करो, यही आपने कहा न !"

"ठीक, तुमने सही समझा।"

आज भी मेघ-गर्जन के रूप में दिव्य वाणी इसी त्रि[illegible]
मंत्र का अनुवाद करती रहती है—द...द...द...दमन [illegible]
दान करो, दया करो।

दमन-दान-दया, इन तीनों की शिक्षा लेना हरेक का [illegible]
है।

२ वेदांत की सीख

वेदांत की कहानी है। दस लड़के मुसाफिरी के लिए निकले। मुकाम पर पहुंचने से पहले वे पांच-दस मील आगे पीछे रह गये। अंत में सब एक पड़ाव पर इकट्ठे हुए। गिनने लगे तो सबने नौ ही गिने। दसों का कहना था, "हम दस थे, किंतु अब एक गुम हो गया।" वस्तुतः गिननेवाला दसवां होता था, जो अपने को गिनता ही न था।

इसी तरह जब मनुष्य अपने को छोड़कर दुनिया का हिसाब करता है तो उसे दुनिया अधूरी-अधूरी दीखती है।

मनुष्य अपनी आत्मा को भूल जाता है, इसीलिए वेदांत कहता है, पहले आत्मा को पहचान लो, फिर दुनिया को पहचानो।

३. आत्मा का बोध

उपनिषद् में एक दृष्टांत आया है। गुरु ने शिष्य से कहा, "... ले आओ, उसे तोड़ो और देखो कि उसमें क्या है!"

... को छोटा-सा बीज दीख पड़ा।

गुरु ने कहा, "इसे भी तोड़ो और देखो, क्या दीखता है।"

शिष्य ने तोड़कर देखा और कहा, "अब कुछ नहीं दीखता।"

फिर गुरु ने कहा, "जो दिखाई नहीं पड़ता, उसीसे इस महान वृक्ष का निर्माण हुआ है। बीज के अंतराल में जो शक्ति है, वही आत्मा है और वही तू है!"

४. सच्चा ज्ञान

आठ-दस साल का एक लड़का हाथ में समिधा[1] लेकर—समिद्पाणि[2] होकर—गुरु के पास गया और बोला, "मैं ज्ञान के लिए आया हूं।"

गुरु ने उससे कहा, "इन चार सौ गायों को चराने का काम करो और यह काम पूरा होने के बाद मेरे पास ज्ञान के लिए आओ। जबतक चार सौ की हजार गायें नहीं होंगी, काम पूरा हुआ नहीं माना जायगा।"

चार सौ की हजार गायें करने के लिए एक या डेढ़ साल की एक योजना दे दी गई। फिर वह हर रोज गायें चराने के लिए ले जाता और शाम को गुरु के पास आकर प्रार्थना करता। गुरु

१. वे लकड़ियां, जिनसे यज्ञ किया जाता है। २. ब्रह्मचारी।

उसे प्रेमपूर्वक खिलाते-पिलाते। डेढ़ साल के बाद उन्होंने शिष्य की ओर देखा और पूछा, "तेरा चेहरा तेजस्विता से चमक... है। तुझे तो कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ-सा दीखता है।"

शिष्य ने कहा, "ज्ञान तो गुरु से ही प्राप्त होता है... आपकी कृपा से मिलेगा ही।"

गुरु ने फिर पूछा, "बात तो ठीक है, परंतु तेरे चेहरे... ज्ञान की चमक दीखती है। क्या तुझे किसीने कुछ ज्ञान दिया..."

शिष्य ने कहा, "अन्ये मनुष्येभ्यः इति" अर्थात् मुझे मनु... ने नहीं, दूसरों ने ज्ञान दिया।"

उसे गाय ने कुछ ज्ञान दिया, बैल ने दिया, अग्नि ने दिया और मग्द्ध नाम के पक्षी ने दिया। उन चारों ने क्या ज्ञान दिया, यह सब उपनिषदों में लिख रखा है।

गुरु ने कहा, "तुझे जो ज्ञान मिला, वह बहुत अच्छा है।"

फिर उसकी पूर्ति में जो-कुछ कहना था, गुरु ने कहा।

उपनिषदों के गुरु विद्यार्थियों को ऊंची दीवारों के अंदर नहीं रखते थे, जिससे उनकी नजर बाहर न जाय।

५. केवल दिग्दर्शन

उपनिषद् में एक कहानी है। किन्हीं चोरों ने एक आदमी की चीजें छीन लीं और आंखों पर पट्टी बांधकर उसे जंगल में छोड़ दिया। वह चिल्लाने लगा, "मुझे कोई मार्ग बताये!" फिर एक आदमी आया और उसने पट्टी हटाकर उसकी आंखें खोल दीं और दिशा बताते हुए कहा, "इस दिशा में गंधार

है।" इस तरह दिशा बताकर कहा, "अब तुम जाओ।"

फिर वह रास्ते में सबसे पूछता-पाछता अपनी बुद्धि के बल ...धार देश में पहुंचा। गुरु उसका हाथ पकड़कर उसे गंधार ...ले गया। गुरु ने तो खाली दिग्दर्शन करा दिया कि इस ...ं गंधार है।

६. 'सर्व ब्रह्म' और 'शुद्ध ब्रह्म'

एक कहानी कठोपनिषद् में है। अक्सर लोग उसका अर्थ समझ नहीं पाते। कहानी यह है कि एक व्यक्ति ने सर्वस्व दान कर दिया। सर्वस्व दान किया तो उसका घर और घर के अंदर जो-कुछ था, वह भी दान में गया। अच्छी गायें थीं, वे भी गईं और खराब गायें थीं, वे भी गईं। यह नहीं कि उसने खराब गायें ढूंढ़कर उन्हें दान में दिया हो। उसने तो सब-कुछ दान में दे दिया था। उसने तो सर्वस्व दान कर दिया था।

उसके एक लड़का था। उसने देखा कि खराब गायें जा रही हैं तो उसने पूछा, "यह आप क्या कर रहे हैं? दान में खराब गायें दी जा सकती हैं क्या?"

पिता ने उत्तर दिया, "जब दान में सभी दिया है तो उसमें यह भी गया और वह भी गया।"

पिता 'सर्व ब्रह्म' समझनेवाला था और बेटा 'शुद्ध ब्रह्म' यानी केवल ब्रह्म को समझनेवाला था। बेटा कहता रहा कि जो शुद्ध है, वही दान हो सकता है, दूसरा नहीं। और पिता कहता था कि सब दिया, उसमें खराब भी आया।

ऐसे दो पक्ष हैं और निश्चय ही 'सर्व ब्रह्म' से 'शुद्ध ब्रह्म' का महत्त्व अधिक है।

७. कुल-धर्म से प्रेरणा

उपनिषद् की एक कहानी है। एक ब्राह्मण का बारह साल की उम्र तक गुरु के घर जाने की केवल बातें करता रहा। उन दिनों माता-पिता सोचते थे कि जब लड़के की स्वाभाविक इच्छा होगी, तब भेजेंगे।

दूसरे लड़के आश्रम में पढ़ने चले भी गए।

एक दिन उसके पिता ने प्रेम से बुलाकर एक वाक्य कहा, "आजतक अपने कुल में 'नाममात्र' का ब्राह्मण एक भी नहीं हुआ। निरक्षर, निरभ्यासी, संस्कार-शून्य कोई ब्राह्मण हुआ ही नहीं।"

इससे ज्यादा उसे नहीं कहना पड़ा। लड़का उठा और उसी समय गुरु के घर चला गया। मनुष्य के चरित्र को प्रेरणा देने-वाली सबसे बलवान चीज कोई है तो वह कुल-धर्म है।

८. भक्त की परीक्षा

उपनिषद् में एक कथा है। भगवान किसीपर प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, "वर मांगो।"

उसने कहा, "प्रभो, मैं क्या जानूं, और कौन-सा वर मांगूं? मुझे इस बात का ज्ञान ही नहीं है कि मेरे लिए क्या योग्य है।

तुम्हीं सबकुछ जानते हो। जो मेरे लिए उचित हो, वह तुम्हीं दे दो।"

और वह भक्त परीक्षा में पास हो गया।

९. सर्वशक्तिमान ब्रह्म

एक बार देवासुर-संग्राम में ब्रह्म ने देवताओं को जय प्राप्त करा दी। देवता गर्व से फूलकर कहने लगे, "यह हमारी ही विजय है, यह हमारी ही महिमा है!"

उनकी यह गर्वोक्ति ब्रह्म के कानों तक पहुंची। वह एक अद्‌भुत यक्ष का रूप धारण करके देवताओं के सामने प्रकट हुए।

"यह क्या बला है?" कहकर देवता विचार करने लगे, लेकिन कुछ भी पता नहीं चला। अंत में उन्होंने अग्नि से कहा, "हे सर्वज्ञ (जातवेदस्) अग्निदेव, यह कौन-सा भूत (यक्ष) है?"

तब अग्नि उस यक्ष के सामने उपस्थित हुआ।

यक्ष-रूपधारी ब्रह्म ने उससे पूछा, "तू कौन है?"

"मैं विश्व-विख्यात अग्नि हूं।"

"तुझमें कौन-सी शक्ति है?"

"मैं पृथ्वी की हर चीज को जला सकता हूं।"

"तब जला यह तिनका!" कहकर ब्रह्म ने घास का तिनका उसके सामने डाल दिया। लेकिन अपनी सारी शक्ति लगाने पर भी अग्नि उस तिनके को नहीं जला सका और अपना-सा मुंह लेकर देवताओं के पास लौट आया।

फिर वायु की बारी आई। उसका भी वही हाल हुआ।
यक्षरूपधारी ब्रह्म ने उससे पूछा, "तू कौन है?"
"मैं माई का लाल (मातरि-श्वा) वायु हूं।"
"तुझमें कौन-सी शक्ति है?"
"मैं पृथ्वी पर की हर चीज को उड़ा सकता हूं।"
"तब उड़ा इस तिनके को!" कहकर ब्रह्म ने वही ति[illegible] वायु के सामने रख दिया। लेकिन उसका हाल भी अग्नि-[illegible] ही हुआ और वह भी वापस लौट गया।

आखिर देवताओं ने सकल समृद्ध (मघवान) इंद्र से प्रार्थना की। वह ब्रह्म के सामने उपस्थित हुआ। इतने में यक्ष-रूपी ब्रह्म वहीं अंतर्धान हो गये। वाद में उसी आकाश में इंद्र को तेज से जगमगाती हुई हिमवान की पुत्री देवी उमा दिखाई दी। इंद्र ने उससे उस यक्ष के बारे में प्रश्न किया।

वह बोली, "जिसके बल पर तुम्हें विजय प्राप्त हुई तथा बड़प्पन मिला, वही यह साक्षात ब्रह्म है।"

उमादेवी के वे शब्द कानों में पड़ते ही इंद्र की बुद्धि में प्रकाश का उदय हुआ

१० मोहासुर कामर्दन

महिषासुर की एक कहानी है। उसके वध के लिए सब देवों ने शक्ति-देवता से प्रार्थना की। वह प्रसन्न हुई। उसने कहा, "तुम सबका सहयोग हो तो मैं यह काम करूंगी।"

तब कोई देव बाण का रूप लेकर और कोई तलवर का

रूप लेकर देवी के हाथ में बैठा, तो कोई सिंह-रूपी वाहन बन गया। इस तरह सब शक्ति-देवता के आयुध बने और महिषा-मर्दिनी का अवतार हुआ। फिर उसने महिषासुर का वध किया।

हिंदुस्तान में भी आज मोह-रूपी एक महिषासुर है, जो औरों की चिंता किये बिना अपना ही घर बनाता है, अकेले ही सुख चाहता है और पड़ोसी के दुख में दुखी नहीं होता। इस मोह-रूपी महिषासुर का मर्दन करने के लिए सबको सम्मिलित शक्ति लगानी चाहिए।

११. डाकू से महर्षि

वाल्मीकि का किस्सा मशहूर है। वह पहले शिकारी था। मनुष्यों को लूट-मारकर अपना गुजारा करता था।

एक दिन उसके सामने नारद आया। वाल्मीकि तलवार लेकर उसपर आक्रमण करने को बढ़ा। नारद ने उसे आते देख वीणा पर गाना शुरू कर दिया। वाल्मीकि उसे देखकर चकित रह गया, फिर भी वह मारने के लिए हिम्मत करके आगे बढ़ा।

वाल्मीकि को समीप आया देख नारद हँस पड़ा। यह वाल्मीकि को और भी विचित्र लगा। वह सोचने लगा कि यह कैसा अजीब जानवर है!

उसने अबतक दो ही प्रकार के लोग देखे थे। एक तो हमला होते ही भाग जानेवाले और दूसरे शरण आनेवाले। लेकिन आज वह अपने सामने तीसरे प्रकार का व्यक्ति देख रहा था।

उसे नारद में कुछ विशेषता दिखाई दी। वाल्मीकि को इस तरह अपनी ओर ताकते देखकर नारद ने पूछा, "कहो आये हो?"

"मैं लूटने आया हूं। यही मेरा पेशा है।" वाल्मी जवाब दिया।

नारद ने पूछा, "क्या तुम अपनी पत्नी से पूछकर आये क्या वह भी तुम्हारे इस पाप में शामिल है?"

वाल्मीकि ने कहा, "होगी क्यों नहीं।"

नारद ने कहा, "जाओ, एक बार पूछ तो आओ।"

उसकी पत्नी ने उससे कहा, "तुम्हारे पापों में मेरा हिस्सा क्यों रहेगा! हां, तुम चोरी का माल लाओगे तो मैं उससे रसोई बनाऊंगी; कमाकर लाओगे तो उससे बना दूंगी। तुम्हारे पापों से मेरा क्या संबंध!"

वाल्मीकि समझ गया। लौट आकर नारद मुनि के चरणों में गिर पड़ा और रोने लगा। फिर बोला, "मैं पापी हूं, मुझे बचाओ!"

नारद ने कहा, "उठ, खड़ा हो! पश्चात्ताप से तेरे जन्म-जन्म के पुराने पाप कट गए। यों समझ कि यह तेरा नया जन्म हुआ। तेरे पुराने पाप माफ हैं।"

वाल्मीकि ने घबराते हुए पूछा, "आपने तो क्षमा कर दिया, लेकिन क्या भगवान भी क्षमा करेंगे?"

नारद ने कहा, "पुराना वाल्मीकि मर गया, अब तेरा नया जन्म हुआ।" यह कहकर उसे समझाया कि किसी गुफा में दस हजार साल का पुराना अंधेरा हो; पर वहां लालटेन जाते ही

पुराना अंधेरा जिस तरह खत्म हो जाता है उसी तरह रामजी का नाम लेने पर पुराने पाप का पश्चात्ताप हो जाता है और पाप कट जाते हैं।

तब से वाल्मीकि ने लूटने का धंधा छोड़ दिया और वह रामजी के नाम का जप करने लगा। उसकी बुद्धि में प्रकाश का उदय हुआ और वह महर्षि बन गया।

१२. रामायण का सार : राम

एक पुरानी कहानी है। वाल्मीकि ने शतकोटि रामायण लिखी थी। तीनों लोकों में इस रामायण के अधिकार को लेकर झगड़ा शुरू हुआ। इस झगड़े का फैसला करने का काम शंकरजी को सौंपा गया।

शंकर भगवान ने इस रामायण को तीनों लोकों में समान रूप से बांटना शुरू किया। तैंतीस करोड़, फिर तैंतीस लाख, इस तरह समान विभाजन करते-करते, अन्त में एक श्लोक बच गया। रामायण के अनुष्टुप छंद का वह श्लोक बत्तीस अक्षरों का था। दस-दस अक्षरों में विभाजन करने के बाद दो अक्षर बचे। तब शंकर भगवान ने कहा, "मैंने आपका झगड़ा मिटाने का काम किया, उसकी मजदूरी तो मुझे मिलनी ही चाहिए। इसलिए बचे हुए ये दो अक्षर मैं अपने लिए रख लेता हूँ।"

क्या थे वे दो अक्षर ? वे थे 'राम' नाम। शंकरजी ने सारी रामायण तीनों लोकों में बांट दी और स्वयं उसका सार दो अक्षरों में ग्रहण किया।

१३. जैसी दृष्टि

रामदास रामायण लिखते जाते और शिष्यों को सु[illegible] जाते थे। हनुमान भी उसे गुप्त रूप से सुनने के लिए आ[illegible] बैठते थे। समर्थ रामदास ने लिखा, "हनुमान अशोक-व[illegible] गये, वहां उन्होंने सफेद फूल देखे।"

यह सुनते ही हनुमान झट से प्रकट हो गये और बो[illegible] "मैंने सफेद फूल नहीं देखे थे। तुमने गलत लिखा है, उसे सुध[illegible] दो।"

समर्थ ने कहा, "मैंने ठीक ही लिखा है। तुमने सफेद फूल ही देखे थे।"

हनुमान ने कहा, "कैसी बात करते हो! मैं स्वयं वहां गया और मैं ही झूठा!"

अन्त में झगड़ा रामचन्द्रजी के पास पहुंचा। उन्होंने कहा, "फूल तो सफेद ही थे, परन्तु हनुमान की आंखें क्रोध से लाल हो रही थीं, इसलिए वे सफेद फूल भी उन्हें लाल दिखाई दिये।"

इस मधुर कथा का आशय यही है कि संसार की ओर देखने की जैसी हमारी दृष्टि होगी, संसार भी हमें वैसा ही दिखाई देगा।

१४. सहचारी भाव

...ने जमाने की बात है। एक सत्य-वक्ता, विशुद्धमना ...वन में तप करते थे। उनके शान्त तप के प्रभाव से वहां ...ी आपसी वैर-भाव भूल गये, जिससे सारा वन एक ... जैसा बन गया।

...स तप के बल से वन-केसरी का स्वभाव बदल जाय, ... इन्द्र का सिंहासन डोलने लगे तो आश्चर्य ही क्या ! इन्द्र ... उस साधु का तप भंग करने का निश्चय किया। हाथ में तल-वार लेकर योद्धा का वेश बना वह साधु के पास आया और विनती की, "क्या आप मेरी यह तलवार कृपा करके अपने ...ास धरोहर के तौर पर रख लेंगे ?"

साधु ने न जाने क्या सोचकर उसकी विनती मान ली। इन्द्र चला गया। साधु ने धरोहर संभालकर रखने की जिम्मे-दारी ली थी। वह दिन-रात तलवार अपने साथ रखने लगा। देव-पूजा के लिए पुष्प आदि लेने जाता तो भी तलवार साथ होती। आरम्भ में उसने धरोहर के नाते तलवार अपनाई थी, धीरे-धीरे तलवार पर उसका विश्वास जमता गया। तलवार नित्य साथ रखते-रखते तपस्या से श्रद्धा जाती रही। लेकिन यह बात उसके ध्यान में भी नहीं आई। कालान्तर में साधु क्रूर हो गया। इन्द्र का सिंहासन स्थिर परन्तु निर्भय हो गया और वन के हरिण डर के मारे कांपने लगे।

रामचन्द्रजी के दंडक वन में घूमते समय उनके हाथों कहीं हिंसा न हो जाय, इस विचार से यह सुन्दर कथा सीताजी ने

उनसे कही थी। हर वस्तु के साथ उसका सहचारी भाव आता ही है। इस कथा का केवल इतना ही भाव है। जैसे सूर्य के समीप उसकी किरणें हैं, वैसे ही वस्तु के समीप उसका [illegible] भाव होता है।

१५. गुड़ न दे, गुड़ जैसी बात तो क[illegible]

रामजी बन्दर से मिले। सुग्रीव ने सीता की खोज [illegible] का वादा किया, लेकिन उसके बाद चार महीने कुछ काम नहीं किया (जैसे बाबा को वादा करनेवालों का अनुभव आता है, ठीक यही अनुभव रामजी को भी आया।)

रामजी ने लक्ष्मण से कहा, "जरा जाकर देखो तो सुग्रीव क्या करता है!"

लक्ष्मण ने हाथ में धनुष उठाया तो रामजी ने कहा, "जरा प्यार से बातें करना, गुस्सा मत होना।"

हनुमान को इसका पता चला। वह सुग्रीव के पास दौड़ा-दौड़ा गया और उसने उससे कहा कि लक्ष्मण के आने से पहले ही रामजी का काम कर दो। तब सुग्रीव ने सीताजी को ढूंढने के लिए अपनी सेना भेज दी।

जब लक्ष्मण सुग्रीव के पास पहुंचे तो सुग्रीव ने कहा, "हम तो विषयों के गुलाम हैं, इसलिए काम को भूल गये थे। लेकिन अभी हनुमान ने याद दिलाई तो तुरन्त सेना भेज दी।"

बड़े-बड़े लोग मेरे पास आकर वादे करते हैं और काम नहीं

करते तो भी मैं दुखी नहीं होता। सोचता हूं कि वे मीठा बोलते हैं। यही क्या कम है!

१६. आशाविकी सुरसा का सामना

तुलसीकृत रामायण में सुरसा राक्षसी की कथा है—'सुरसा नाम अहिन की माता।' वह हनुमान के सामने खड़ी हो गई और उसने जब अपना मुंह एक योजन का किया तो हनुमान दो योजन के हो गये। जब उसने दो योजन मुंह फाड़ा तो वे

चार के हो गये। जब हनुमान चार योजन के हुए तो सुरसा आठ योजन की बन गई। फिर हनुमान सोलह योजन के हु... "सुरसा बतीस भयउ।"—

अंत में हनुमान की समझ में आया कि इसके आगे गुण... क्रिया करते रहने से काम नहीं चलेगा। बत्तीस का चौं... चौंसठ का एक सौ अट्ठाइस करने में कोई मतलब न... इसका तो कोई अंत ही नहीं होगा। यह न्यूक्लीयर वैपन... पहुंच जायेगा। ऐसा सोचकर हनुमान ने अति लघु रूप ध... किया और सुरसा मुंह के अंदर जाकर नासिकारंध्र से बाहर निकल आया। बस सारा मामला ही खत्म हो गया।

इस कथा से हमको यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जो सु... इतना भयानक रूप लेकर एटम और हाइड्रोजन बम के रूप ... हमारे सामने खड़ी है, हम अति लघु रूप धारण करके उसके अंदर चले जायं और नासिकारंध्र से बाहर निकल आवें।

१७. खग जाने खग ही की भाषा

तुलसी रामायण में एक कहानी है। विष्णु के वाहन गरुड़ थे। उन्होंने विष्णु भगवान से कहा, "मुझे रामजी के अवतार के बारे में शंका है। आप उसके बारे में कुछ कहिए।"

विष्णु भगवान ने कहा, "तुम शंकरजी के पास जाओ। वे बहुत ज्ञानी हैं, वे तुम्हें समझायेंगे।"

गरुड़ शंकरजी के पास गये। शंकर ने बताया, "मैं समझा

१. अणु-अस्त्र

तो सकता हूं, लेकिन सामने एक पेड़ है, उसपर एक ज्ञानी वृद्ध
ा बैठा है, वह तुमको समझायगा।"

गरुड़ को बहुत आश्चर्य हुआ, लेकिन वह कौवे के पास गया। उसने गरुड़ को बहुत अच्छी तरह सारी बातें समझा दीं।

'खग जाने खग ही की भाषा'—पक्षी की भाषा पक्षी ही नते हैं। पक्षी को समझाने के लिए पक्षी ही चाहिए।

१८. राम की कृति में उपदेश

राम और परशुराम की पहली भेंट धनुष-यज्ञवाले प्रसंग में हुई थी। परशुराम को उसी समय रामचन्द्र से जीवन-दृष्टि मिली थी। उसके बाद बहुत दिनों तक उन दोनों की भेंट नहीं हुई। लेकिन अपने वनवास के दिनों में रामचन्द्र पंचवटी में आकर रहे तो वहां उनके निवास के आखिरी वर्ष में बांगलाण की तरफ से परशुराम उनसे मिलने आये। जब वे पंचवटी के आश्रम में पहुंचे तो रामचन्द्रजी पौधों को पानी दे रहे थे।

परशुराम से मिलकर रामचंद्र को बड़ा आनंद हुआ। राम ने तपस्वी और वृद्ध परशुराम का साष्टांग प्रणाम-पूर्वक स्वागत किया और कुशल-प्रश्नादि के बाद उनके कार्यक्रम के बारे में पूछा। परशुराम ने कुल्हाड़ी के अपने नये प्रयोग का सारा हाल रामचन्द्र को सुनाया। रामचन्द्र ने उनकी भूरि-भूरि प्रसंशा की। दूसरे दिन परशुराम वहां से लौट गये।

अपने मुकाम पर पहुंचते ही उन्होंने उन नये ब्राह्मणों को राम का सारा हाल सुनाया और बोले, "रामचन्द्र मेरा गुरु है।

अपनी पहली ही भेंट में उसने मुझे जो उपदेश दिया, उससे मेरी वृत्ति पलट गई और मैं तुम्हारी सेवा करने लगा। अब की मुकालात में उसने मुझे शब्दों द्वारा कोई उपदेश नहीं, लेकिन उसकी कृति से मुझे उपदेश मिला। वही मैं अब तुम लोगों को सुनाता हूं—हम लोग जंगल काट-काटकर ब[illegible] बसाने का यह जो कार्य कर रहे हैं, वह बेशक उपयोगी[illegible] लेकिन इसकी भी मर्यादा है। उस मर्यादा को जाने विन[illegible] अगर पेड़ काटते ही रहे तो वह एक बड़ी भारी हिंसा होग[illegible] कोई भी हिंसा अपने कर्ता पर उलटे बिना नहीं रहती, यह त[illegible] मेरा निजी अनुभव है। इसलिए अब हम पेड़ काटने का काम खत्म करें। आजतक जितना कुछ किया सो किया। अब ह[illegible] जीवनोपयोगी वृक्षों की रक्षा का काम भी अपने हाथ में लेन[illegible] चाहिए।"

यह कहकर परशुराम ने उन्हें आम, केले, नारियल, काजू, कटहल, अनन्नास आदि छोटे-बड़े फलदार वृक्षों के संगोपन की विधि सिखलाई।

१९. सेना से विजय नहीं

मुझे महाभारत का एक किस्सा याद आ गया है। युद्ध सामने था। कृष्ण भगवान की मदद के लिए दुर्योधन और अर्जुन दोनों उनके पास पहुंचे। भगवान सोये हुए थे। अर्जुन चरणों के पास बैठा और दुर्योधन मस्तक के पास।

भगवान ने आंखें खोलीं तो उन्हें अर्जुन सामने दीख पड़ा।

उन्होंने पूछा, "किसलिए आये हो ?"

अर्जुन ने कहा, "युद्ध होने जा रहा है, उसमें आपकी मदद इए ।"

दुर्योधन बोला, "मैं भी यहीं बैठा हूं।" तब भगवान की गाह उसकी तरफ गई।

भगवान ने कहा "अर्जुन उम्र में छोटा है, इसलिए वही ए बताये कि उसे क्या मदद चाहिए। दो प्रकार की मदद ल सकती है। एक तो यादव सेना और दूसरा निःशस्त्र मैं। र्जुन, तू क्या पसन्द करता है ?"

दुर्योधन देख रहा था। उसे डर लगा कि अर्जुन को पहला ौका दिया है, कहीं ऐसा न हो कि वह सेना ही मांग ले। यह तो बड़े खतरे की बात हो जायगी। जिस काम के लिए मैं सिर के पास आकर बैठा, वह चौपट ही हो जायगा।

इतने में अर्जुन ने कहा, "न्यस्तायुध।" (निःशस्त्र तू ही चाहिए।)

यह सुनकर दुर्योधन खुश हुआ कि बला टली।

भगवान ने उससे पूछा, "क्यों भाई, तेरे लिए तो अब सेना ही रही। तू खुश है न ?"

दुर्योधन ने कहा, "जीहां, खुश हूं।"

दुर्योधन सेना से विजय चाहता था, परन्तु अर्जुन को सेना पर विश्वास नहीं था।

२०. भारत की अद्भुत सभ्यता

भीष्म-द्रोण दुर्योधन के पक्ष में थे। दूसरे पक्ष में पांडव और श्रीकृष्ण थे। भीष्म-द्रोण का प्रेम युधिष्ठिर को प्राप्त तो था, पर वे उनको अपने पक्ष में नहीं कर सके। लेकिन प्रेम था इसलिए युद्ध की शुरूआत में महाराज युधिष्ठिर भीष्म के पहुंचे।

आमने-सामने सेनाएं खड़ी हैं सब लड़ाई की तैयारी में और बड़े तड़के युधिष्ठिर भीष्म से मिलने जाते हैं। उनके पक्षवालों तक को इसका पता नहीं। भीष्मदेव के पास जाकर वे कहते हैं कि मैं आपको प्रणाम करने और आपका आशीर्वाद लेने के लिए आया हूं, जिससे इस युद्ध में मेरी विजय हो। उन्होंने उनका आशीर्वाद प्राप्त कर लिया और पूछा भी कि भीष्म पितामह, कृपा कर यह बताइए कि आपकी मृत्यु किस तरह होगी ?

किसी भी लड़ाई में क्या इस तरह की कहानी आपने सुनी है ? मैं बहुत-सी भाषाएं जानता हूं, पर उन भाषाओं में मैंने ऐसा कोई काव्य नहीं पढ़ा कि एक व्यक्ति अपने शत्रु के पास जाकर उसे मारने का तरीका पूछे। भीष्म ने युधिष्ठिर को वह युक्ति बता दी और उसी युक्ति से भीष्म का अंत भी हुआ। ऐसी अद्भुत हमारी सभ्यता है। अत्यन्त प्रेम रखते हुए हम शत्रु को जीत सकते हैं। अंदर प्रेम है, लेकिन विचार के खयाल से दो पक्ष परस्पर-विरोध में खड़े हैं। यही तो भारतीय सभ्यता का जादू है।

२१. तक्षक अमर कैसे हुआ

महाभारत में सर्पसत्र की कहानी है। सारे सांप मारे गये। सिर्फ तक्षक इंद्र के पीछे छिपा रहा, जिससे मारा नहीं जा सकता था। 'तक्षाय स्वाहा' कहने से भी तक्षक नहीं आया, क्योंकि उसे इंद्र का बल प्राप्त था। इसलिए फिर 'इंद्राय तक्षाय स्वाहा' कहा गया। इससे इंद्र तो नहीं मरा, क्योंकि वह तो अमर था ही, तक्षक भी अमर हो गया।

यही बात, सज्जनों और दुर्जनों पर भी लागू होती है। किसी भी जमात में सारे दुर्जन तो नहीं होते। श्रीमानों में बहुत सारे दुर्जन होंगे तो उनमें कुछ सज्जन भी होंगे। दोनों को एक करने से हमारा काम नहीं बनता। सज्जनों को दुर्जनों से अलग करना ही हमारा मुख्य काम होना चाहिए।

२२. कामना की तृप्ति त्याग में

महाराज ययाति का किस्सा महाभारत में है। उन्होंने अपने लड़के से कहा कि मेरा बुढ़ापा ले लो और मुझे तरुणाई दे दो। एक लड़का तैयार हो गया। उसने बुढ़ापा ले लिया और अपनी जवानी दे दी। महाराज ययाति जवान हो गये और विषयों की तृप्ति में लग गये।

आखिर तृप्ति नहीं हुई तो बोले, "कामना की तृप्ति भोग में नहीं, त्याग में है।"

२३. बैल की सेवा करें

महाभारत में एक कहानी है। बैल ब्रह्मदेव के पास गये। उनकी शिकायत थी कि आजकल किसान हमें सताते हैं।

ब्रह्मदेव ने उनसे कहा, "देखो जो किसान बैल की चिन्ता नहीं करेगा, उसे खिलाये बिना खायेगा, उसके खेतों की उन्नति नहीं होगी।"

ब्रह्मदेव ने यह शाप दिया और कह दिया कि मरने के बाद किसान को अच्छी गति नहीं मिलेगी।

२४. सलक्ष्य काम कीजिए

एक बार गुरु ने पांडवों की परीक्षा ली। पक्षी का शिकार करना था। युधिष्ठिर से पूछा गया, "तुम्हें सामने क्या दीख रहा है?"

युधिष्ठिर ने जवाब दिया, "स्थान भी दीखता है, पक्षी भी दीखता है और गुरुजी, आप भी दीखते हैं।"

गुरुजी ने कहा, "तुम फेल हुए।"

यही सवाल अन्य भाइयों से भी गुरुजी ने पूछा तो उन्होंने भी यही जवाब दिया, "वृक्ष, पक्षी, आप, सभी कुछ नजर आते हैं।"

गुरुजी ने सभी को फेल कर दिया।

आखिर अर्जुन की बारी आई। उससे पूछा गया, "तुम्हें क्या दीखता है?"

अर्जुन ने कहा, "मुझे लक्ष्य के सिवा कुछ भी नहीं दीखता।"

तब गुरु द्रोणाचार्य ने उसे तीर छोड़ने के लिए कहा और पास भी कर दिया।

२५. धर्मराज का न्याय

धर्मराज ने अपने महल में एक घंटा टांग रखा था। जो कोई भी आता और घंटा बजाता, धर्मराज तुरन्त नीचे उतरकर उसे न्याय देते थे।

एक दिन भीम, अर्जुन आदि सभी भाई बातचीत कर रहे थे। इसी बीच किसी ने आकर घंटा बजाया। सभी भाई बातों में लीन थे, बड़ा रस आ रहा था। घंटा सुनकर उन्होंने कहा, "आये तो क्या, आपको न्याय कल दिया जायगा।"

इसपर युधिष्ठिर ने कहा, "भाई, यह ठीक नहीं। क्या भरोसा कि कल तक हम लोग जीवित ही रहेंगे। हमारी सत्ता तो अभी इस क्षण है। अगर यमराज ने हमें यह लिखकर दिया हो कि हम कल तक जीवित रहेंगे तो बात अलग है। बाकी शासक के लिए न्याय देना ही धर्म है, बातचीत करना नहीं।"

२६. जब दुनिया नष्ट होने से बची

व्यासजी की कथा आप जानते ही होंगे। महाभारत हुआ। कौरव, पांडव सभी उनके संबंधी थे। उन्होंने उन्हें आपस में युद्ध न करने के लिए समझाया, पर वे तो लड़ने की ठान ही बैठे थे। जब व्यासजी की बात नहीं मानी गई तो उन्होंने वहां रहना ठीक न समझा और तपस्या करने केदारनाथ-बदरीनाथ चले गये।

इधर लड़ाई में ब्रह्मास्त्र छोड़ने की नौबत आ गई। उससे दुनिया नष्ट हो जाती। व्यासजी उसके दुष्परिणाम जानते थे। उनसे न रहा गया। वह समझाने के लिए आये। वह अकेला ऐसा आदमी था, जो उस अस्त्र को वापस लौटाने के लिए अर्जुन को राज़ी कर सका। इस तरह उस समय जो संकट आनेवाला था, वह टल गया।

२७. सेवक कृष्ण-जैसे हों

हमारी मां हमें एक कहानी सुनाती थीं। कहती थीं, रामायण में रामजी ने खूब सेवा करवाई। लक्ष्मण से सेवा करवाई, बंदरों से सेवा करवाई। सेवा कराते-कराते आखिर थक गये, ऊब गये। वह बड़े भाई थे। इसलिए नये अवतार में छोटे भाई बन गये—कृष्ण। उस अवस्था में उन्होंने सबकी सेवा की। कहीं हुकूमत नहीं चलाई।

मालिक कैसा होना चाहिए, इसका नमूना तुलसीदास लिखते

हैं—"प्रभु तरु तल कपि डार पर।" बंदर ऊंचे स्थान पर, पेड़ पर बैठते थे और प्रभु पेड़ के नीचे। इसलिए मालिक राजा राम-जैसा और सेवक-खिदमतगार कृष्ण-जैसे हों।

हम कहना यह चाहते हैं कि भाई-भाई में भी एक छोटा और एक बड़ा होता है। रामजी बड़े भाई बने तो उन्होंने समझा कि तजुरबे में कोई खराबी रह गई, इसलिए उन्होंने नया जन्म कृष्ण का लिया और छोटे भाई बने।

२८. माता के हाथ की रसोई

भगवान श्रीकृष्ण गुरु के घर पढ़ने गये तो छः महीने में उन्होंने पूरी रसोई बनाना सीख लिया।

श्रीकृष्ण को गुरु के घर भेजने का कारण यह था कि उनके माता-पिता को लगा कि अपना लड़का अशिक्षित ही रह गया। उस समय तक कृष्ण कंस को पराजित कर, प्रजा को उसके अत्याचारों से मुक्ति दिला चुके थे।

जब वह गुरु के घर गये तो गुरु को आश्चर्य हुआ कि सारे समाज का उद्धार करनेवाले को मैं क्या पढ़ाऊंगा? आखिर छः महीने तक पढ़ाई का नाटक चला। इस बीच श्रीकृष्ण ने रसोई बनाना सीखा। बिदाई के समय कृष्ण ने गुरु की सेवा की तो गुरु ने कहा, "अब तू वरदान मांग।"

कृष्ण ने कहा, "मुझे तो कुछ सूझता ही नहीं कि मैं क्या मांगू ?"

गुरु ने कहा, "तू वरदान मांग, नहीं तो मेरा गौरव नष्ट

हो जायगा।"

तब कृष्ण ने यह वरदान मांगा, "मुझे जिंदगी-भर माता के हाथ का भोजन मिले।"

कहते हैं, कृष्ण को जिंदगी-भर माता के हाथ की रसोई खाने को मिली। अपने हाथ से रसोई बनाकर लड़के को खिलाने से बढ़कर वशीकरण शक्ति क्या हो सकती है?

२९. भगवान का आदर्श

राजसूय-यज्ञ के समय भगवान कृष्ण ने युधिष्ठिर महाराज से काम मांगा तो युधिष्ठिर ने कहा कि आपके लिए हमारे
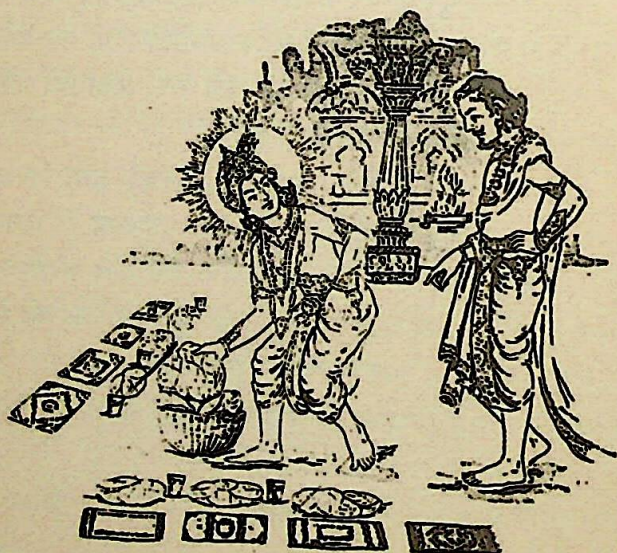
पास काम नहीं है । लेकिन भगवान ने कहा कि मैं बेकार नहीं रहना चाहता। इस पर युधिष्ठिर ने कहा कि आप अपना काम खुद ढूंढ़ लीजिए।

भगवान ने कहा, "मैंने अपना काम ढूंढ़ लिया। झूठी पत्तलें उठाने और लीपने का काम मैं करूंगा । मैं इस काम के लायक हूं।"

३०. गिरिधर

एक बार बहुत जोर की वर्षा शुरू हुई। सात दिन हो गए, वर्षा थमी ही नहीं। तब भगवान कृष्ण ने कहा, "अरे, इसमें क्या बात है ! हम लोग छाते की तरह पहाड़ ही उठा लेंगे तो बारिश की परेशानी दूर हो जायेगी।"

लोग कहने लगे, इतना बड़ा पहाड़ उठाया कैसे जायेगा ?

कृष्ण ने कहा, "हम सभी बड़े-बूढ़े, स्त्री-पुरुष, मिलकर पहाड़ उठा लेंगे। आप लोग अपनी-अपनी लकड़ी लगाइये।"

सबने श्रद्धा से अपने-अपने हाथ और लकड़ियां उस पहाड़ में लगाईं। भगवान कृष्ण बांसुरी बजाते रहे। जब उन्होंने देखा कि सब हाथ लग गए तब धीरे से अपनी कन्नी अंगुली पहाड़ से लगादी। तत्काल पहाड़ उठ गया। इसीलिए उनका नाम गिरिधर हो गया।

३१. तुलसी की तरह हृदय शुद्ध बनाइये

एक मशहूर कहानी है कि सत्यभामा भगवान श्रीकृष्ण को तौलना चाहती थी। एक पलड़े में भगवान बैठे और दूसरे पलड़े में वह अपने सोने के गहने डालती गई। फिर भी भगवान का पलड़ा भारी ही रहा। आखिर वह थक गई। उधर से रुक्मिणी आई और उसने देखा कि सत्यभामा परेशान है तो उसने स[...] के गहनों पर तुलसी का एक पत्ता डाला और झट भगवान का पलड़ा हलका हो गया, पत्तेवाला पलड़ा भारी हो गया।

तुलसी के उस पत्ते में कोई वजन नहीं था, थी केवल रुक्मि[...] की प्रीति, भक्ति और हृदय की शुद्धि। इसीलिए तुलसी के छोटे-से पत्ते का भगवान के निकट इतना अधिक महत्त्व था।

शुद्ध हृदय से की हुई सेवा का वास्तव में बड़ा महत्त्व है।

३२. प्रभु की कृपा

सुदामा की कहानी है। उसकी पत्नी ने उसे भगवान के पास भेजा, यह कहकर कि वह तुम्हारा पुराना मित्र है, तुम्हारी दरिद्रता दूर कर देगा।

सुदामा चिउड़ा लेकर भगवान के पास गया। भगवान ने प्रेम से चिउड़ा खाया। उसे अपने आसन पर बिठाया। लौटते समय उसे छोड़ने के लिए काफी दूर तक गये।

सुदामा सोचने लगा कि प्रभु की कितनी कृपा हुई कि कोई भौतिक दान नहीं दिया, नहीं तो मैं आसक्ति में फंसता। पत्नी

ने तो मुझे इसीलिए भेजा था। भगवान की अपार कृपा है कि उसने मुझे कोई स्थूल वस्तु नहीं दी।

इस तरह सोचते-सोचते सुदामा घर पहुंचा तो उसे स्वर्णनगरी दीख पड़ी। उसमें हर चीज सोने की थी। देखकर सुदामा को आश्चर्य हुआ। उसने पत्नी से कहा, "यह तो मेरा घर नहीं है। मेरा घर दूसरा ही है। इसलिए यह जो सारा प्रभु का है, वह उसीको लौटायेंगे।" इस तरह उन्होंने अनासक्त रहने की बात कही।

सुदामा को द्वारिका में कुछ नहीं मिला तो भी उसने यही कहा कि प्रभु की कृपा है। उधर जब देखा कि बहुत-कुछ मिल गया है तो कहा कि यह भी प्रभु की कृपा है। लेकिन जो मिला वह भोग करने के लिए नहीं मिला, यह सोचकर वह अनासक्त भाव से रहने लगा। इस तरह हर चीज में प्रभु की कृपा माननी चाहिए तो हर तरफ से प्रभु की कृपा का ही अनुभव होता है।

३३. सुख की कुंजी

महाभारत की एक कहानी है। सत्यभामा ने द्रौपदी से पूछा कि तुम जंगल में रहकर भी सुखी कैसे रह सकती हो? हम तो द्वारिका में भी सखी नहीं हैं। सुख की कुंजी क्या है, हमें भी बता दो।

द्रौपदी ने कहा, "दुःखेन साध्वी लभते सुखानी, अर्थात दुख से ही सुख प्राप्त होता है।" जो दूसरों के लिए तकलीफ उठाने को तैयार हैं, वे ही सुखी हो सकते हैं।

३४. भगवान का स्मरण

कुन्ती का किस्सा मशहूर है। जब भगवान उनपर प्रसन्न हुए और उनसे वर मांगने को कहा तो उन्होंने मांगा—"विपद: संतु न: शाश्वत:—मुझे दुख ही रहे।"

भगवान बोले, "यह कैसा वर मांगती है!"

कुन्ती ने कहा, "दुख रहता है तो दुखियों के प्रति हमदर्दी रहती है और भगवान का निरंतर स्मरण रहता है। सुख में मनुष्य का हृदय निष्ठुर हो जाता है। वह भगवान को भूल जाता है।"

३५. भारतीय संस्कृति : अन्याय का प्रतिरोध

महाराजा दुष्यन्त की कहानी है। एक दफा वह शिकार के लिए निकले। उन दिनों राजा लोग हरिणों का शिकार करते थे, क्योंकि हरिण लाखों की संख्या में थे और फसल को नष्ट करते थे। इसलिए राजा लोग हरिणों का शिकार करना अपना कर्तव्य समझते थे।

दुष्यन्त शिकार करते-करते कण्व मुनि के आश्रम में पहुंचे। वहां के हरिणों का शिकार करने के लिए उन्होंने धनुष ताना। इतने में आश्रम का एक छोटा-सा लड़का कहता है, "आश्रम-मृगो अयम्, न हंतव्यो न हंतव्यो।" (यह आश्रम का मृग है। इसे आप नहीं मार सकते।)

यह है भारत की संस्कृति, जहां पर आश्रम का एक छोटा-

सा बच्चा यह हिम्मत रखता है कि राजा के सामने जाकर उसे रोके। यह चीज हम फिर से लाना चाहते हैं—अन्याय के सामने डटकर खड़े हो सकें, इसीका नाम स्वराज्य है।

३६. वित्त में अमृतत्व नहीं

पुरानी कहानी है। याज्ञवल्क्य ऋषि के दो पत्नियां थीं। एक सामान्य, संसार में आसक्ति रखनेवाली और दूसरी विवेकशील, जिसका नाम मैत्रेयी था। याज्ञवल्क्य को लगा कि अब घर छोड़कर आत्मचिंतन के लिए बाहर जाना चाहिए। जाते समय उन्होंने दोनों पत्नियों को बुलाया और कहा, "अब मैं घर छोड़कर जा रहा हूं। जाने से पहले जो भी संपत्ति है, आप दोनों में बांट दूं।"

तब मैत्रेयी ने पूछा, "क्या पैसे से अमृत-जीवन प्राप्त हो सकता है?"

याज्ञवल्क्य ने जवाब दिया, "नहीं। अमृतत्त्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन—वित्त से अमृतत्त्व की आशा करना बेकार है। उससे तो वैसा जीवन बनेगा, जैसा कि श्रीमानों का होता है। वह तो मृत-जीवन है। अमृत-जीवन की अगर इच्छा है तो आत्मा की व्यापकता का अनुभव करो। सबकी सेवा करो। सबसे एकरूप हो जाओ।"

३७. द्वेष को प्रेम से शांत करें

वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों ऋषि थे। विश्वामित्र के मन में वशिष्ठ के प्रति द्वेष था। वशिष्ठ को उसने बहुत सताया और आखिर में उनके बच्चे को मार भी डाला। परंतु वशिष्ठ फिर भी शांत रहे। इससे विश्वामित्र का द्वेष और भी भड़का।

विश्वामित्र ने सोचा कि अब तपस्या ही करनी चाहिए। उसने कठिन तपस्या की। वशिष्ठ ने कहा, "तुम राजर्षि हो।" लेकिन विश्वामित्र ब्रह्मर्षि होना चाहता था। विश्वामित्र में अभी क्रोध, द्वेष, मत्सर था, इसलिए वशिष्ठ ने उसको ब्रह्मर्षि मानने से इनकार कर दिया।

विश्वामित्र का क्रोध और बढ़ा और उसने तय किया कि यदि यह बात होनी ही नहीं है तो वशिष्ठ को ही मार डालना चाहिए। एक रात वशिष्ठ को मारने के लिए विश्वामित्र उनके आश्रम में आया। वह चांदनी रात थी। अरुंधती और वशिष्ठ बातें कर रहे थे। विश्वामित्र ने देखा और सुनने के लिए झाड़ी में छिप गया।

अरुंधती वशिष्ठ से कह रही थी, "आज की रात की चांदनी कितनी लुभावनी है!"

वशिष्ठ बोले, "हां, है तो सही, विश्वामित्र की तपस्या के समान आनंददायिनी है।"

विश्वामित्र को यद्यपि वशिष्ठ से द्वेष था, फिर भी उसकी तपस्या से वशिष्ठ को आनंद होता था। वह विरोधी की

पस्या का भी आदर करना जानते थे, इसीलिए उन्हें वह चांदनी रात विश्वामित्र की तपस्या के समान मालूम हो रही थी।

विश्वामित्र ने सुना तो सोचने लगा कि मैं इसको तकलीफ देता हूं, फिर भी इसके मन में मेरे गुणों के प्रति आदर है। मुझ में जो गुण हैं, उनकी यह कदर करता है। वह पिघल गया और सामने आकर उसने वशिष्ठ को प्रणाम किया।

तब वशिष्ठ ने कहा: "ब्रह्मर्षि उत्तिष्ठ।"

कोई द्वेष करे, तब भी हमें उससे प्रेम ही करना चाहिए।

३८. क्रोधाग्नि पर प्रेम का पानी

एक बार ज्ञानदेव महाराज को क्रोध आ गया तो उनकी बहन मुक्ताई ने कहा, "ताटी उघड़ा ज्ञानेश्वरा" (ज्ञानेश्वर महाराज, आप अपना अकड़ना कम कीजिये)।

उन्होंने कहा, "विश्व रागे झाले वहन, संत मुखे बहावे पानी।" (यदि दुनिया आग-बबूला हो उठे तो संतों को चाहिए कि स्वयं पानी बन जायें।)

अग्नि को पानी बुझा देता है। अगर पानी में आग डाल दें तो क्या वह पानी को जला देगी या खुद ही बुझ जायेगी? संतों का स्वभाव भी ऐसा होना चाहिए। कोई कितना ही क्रोधित क्यों न हो, उन्हें शांत रहना चाहिए।

३९. निष्पाप जीवन का रहस्य

एकनाथ महाराज की कहानी है। एक सज्जन ने उनसे पूछा, "महाराज, आपका जीवन कितना सीधा-सादा और निष्पाप है! हमारा जीवन ऐसा क्यों नहीं? आप कभी किसी पर गुस्सा नहीं होते। किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं, टंटा-बखेड़ा नहीं। कितने शांत, कितने प्रेमपूर्ण, कितने पवित्र हैं आप!"
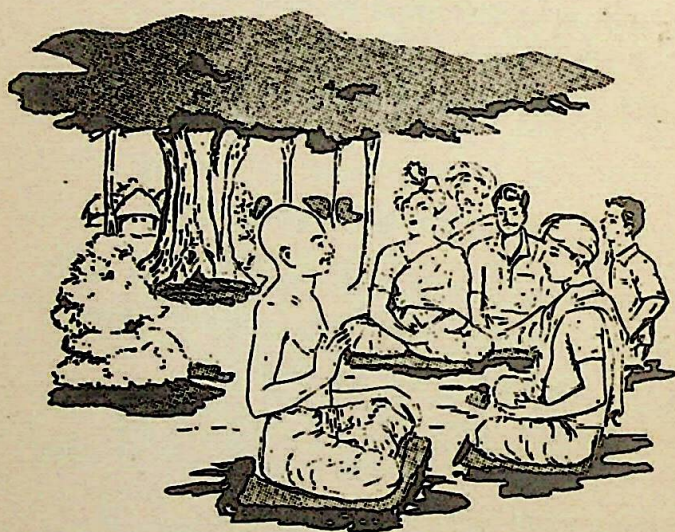
एकनाथ ने कहा, "अभी मेरी बात छोड़ो। तुम्हारे संबंध में मुझे एक बात मालूम हुई है। आज से सात दिन के भीतर तुम्हारी मौत आ जायेगी।"

एकनाथ की कही बात को झूठ कौन मानता! सात दिन में मृत्यु! सिर्फ १६८ घंटे बाकी रहे! हे भगवान, यह क्या

अनर्थ ! वह मनुष्य जल्दी-जल्दी घर दौड़ा गया। कुछ सूझ नहीं पड़ता था। आखिरी समय की, सब-कुछ समेट लेने की, बातें कर रहा था। वह बीमार हो गया। बिस्तर पर पड़ गया। छः दिन बीत गए। सातवें दिन एकनाथ उससे मिलने आये। उसने नमस्कार किया। एकनाथ ने पूछा, "क्या हाल है ?"

उसने कहा, "बस, अब चला !"

नाथजी ने पूछा, "इन छः दिनों में कितना पाप किया ? पाप के कितने विचार मन में आये ?"

वह मरणासन्न व्यक्ति बोला, "नाथजी, पाप का विचार करने की तो फुरसत ही नहीं मिली। मौत एक-सी आंखों के सामने खड़ी थी।"

नाथजी ने कहा, "हमारा जीवन इतना निष्पाप क्यों है, इसका उत्तर अब मिल गया न ?"

मरण-रूपी शेर सदैव सामने खड़ा रहे, तो फिर पाप सूझेगा किसे ?

४०. ज्ञानी का गुण : नम्रता

नम्रता की एक कहानी मैं आपको सुनाऊंगा।

एकनाथ महाराज के एक शिष्य थे दंडवत स्वामी। भागवत के वे बड़े भक्त थे। भागवत में एक जगह एक वाक्य आया है— "प्रणमेत् दंडवत् भूमौ आश्वचांडाल गोखरम्"—याने कुत्ता, चांडाल, गाय, गधा, जो भी मिले उसके सामने दंडवत प्रणाम करना चाहिए। यह पढ़कर दंडवत स्वामी ने अपना कार्यक्रम

शुरू कर दिया। रास्ते में, नदी के किनारे जहां-कहीं जिस किसी को देखा, चाहे वह जड़ हो या चेतन, मनुष्य हो या गधा-घोड़ा, उन्होंने सभी को प्रणाम करना शुरू कर दिया।

पहले तो लोग उन्हें पागल समझने लगे, पर कुछ दिनों बाद वे इसके आदी हो गए। दण्डवत स्वामी वैसा ही करते रहे, जिससे आगे चलकर लोग उन्हें भागवत-भक्त समझने लगे। फिर लोग उनकी इतनी अधिक पूजा करने लगे कि वे उससे तंग आ गए। यह विनम्रता उनके लिए कष्टकर हो उठी।

आखिर वे एकनाथ के पास पहुंचे और उन्हें सारी कहानी कह सुनाई। एकनाथ महाराज ने सारी कहानी सुन ली और कहा, "शास्त्र-वाक्यों का शब्दार्थ नहीं लिया जाता, उनका सार ही लेना पड़ता है। उनका मानसिक अर्थ लेना चाहिए। उसे शारीरिक कार्यक्रम नहीं बनाना चाहिए। इसलिए अब इस जन्म में तू पूज्यभाव से बच नहीं सकता। मेरा सुझाव है कि तू गंगा में (गोदावरी के किनारे रहते थे और उसी को गंगा कहते थे) इस शरीर का विसर्जन कर दे।"

दंडवत स्वामी गंगा में कूद पड़े। वे तैरना जानते थे, पर जब तैरते-तैरते थक गए तो डूबकर मर गए।

सारांश यह कि नम्रता एक स्थूल वस्तु नहीं, वह एक स्वाभाविक गुण है। उसके लिए कोई कार्यक्रम बनाना नहीं पड़ता और न कार्यक्रम से वह बन सकती है। नम्रता ज्ञानी का स्वाभाविक गुण है।

४१. सत्याग्रही एकनाथ

एकनाथ महाराज की एक कहानी है। वे बहुत बड़े सत्याग्रही थे। वे स्नान करने के लिए नदी पर गये और स्नान करके वापस लौटे तो रास्ते में एक व्यक्ति ने उनके ऊपर थूक दिया। उन्होंने दुबारा स्नान किया, पर उस व्यक्ति ने फिर उन पर थूका, तो उन्होंने फिर से स्नान किया। इस तरह वह थूकता गया और वे स्नान करते गए।

आखिर थूकनेवाले को हारकर उनकी शरण में आना पड़ा।

४२. भजन और भोजन साथ-साथ

एकनाथ की कहानी है। वे कीर्तन करते, और उसके बाद प्रसाद बांटते थे। उन्होंने अपने सेवक श्रीखंडचा से (जो वास्तव में भगवान ही रूप बदलकर उनकी सेवा के लिए सदा तैयार रहते थे) कहा कि यहां लोग तीन-चार घंटे बैठते हैं, इसलिए उन्हें जरा ज्यादा प्रसाद दिया करो।

श्रीखंडचा ने एक कलछा लिया और उसे भर-भरकर प्रसाद बांटने लगा। नाथ की मधुर वाणी सुनने के लिए लोग योंही काफी तादाद में जुटते थे, फिर चकाचक प्रसाद चल पड़ा तो भीड़ का क्या पूछना !

इस तरह एकनाथ ने भजन को भोजन से जोड़कर समाज को धर्म सिखलाया।

४३. पहले भोजन

एक बार भगवान बुद्ध का एक प्रचारक घूम रहा था। उसे एक भिखारी मिला। वह प्रचारक उसे धर्म का उपदेश देने लगा। भिखारी ने उसकी तरफ ध्यान ही नहीं दिया। प्रचारक नाराज हुआ। बुद्ध के पास जाकर बोला, "वहां एक भिखारी बैठा है। मैं उसे इतनी अच्छी-अच्छी शिक्षा दे रहा था, पर उसने कोई ध्यान ही नहीं दिया।

बुद्ध ने कहा, "उसे मेरे पास लाओ।"

वह प्रचारक उसे बुद्ध के पास ले गया। भगवान बुद्ध ने उसकी दशा देखी। उन्होंने ताड़ लिया कि यह तीन-चार दिन से भूखा है। उन्होंने उसे भरपेट भोजन कराया और कहा, "अब जाओ।"

प्रचारक ने कहा, "आपने उसे खिला दिया, लेकिन उपदेश कुछ भी नहीं दिया।"

भगवान बुद्ध ने कहा, "आज उसके लिए अन्न ही उपदेश था। आज उसे अन्न की ही सबसे ज्यादा जरूरत थी। वह उसे पहले देना चाहिए। अगर जीवित रहा तो कल उपदेश भी सुनेगा।"

४४. प्रेम का आक्रमण

मंबाजी ने तुकाराम महाराज को डंड से मारा। उस रात तुकाराम महाराज मंबाजी के पास गये और बोले, "हाथ में डंडा लेकर मारने से आपके हाथ को कष्ट हुआ होगा। क्या मैं दबा दूं?"

तुकाराम महाराज ने अनुभव किया कि मंबाजी की इच्छा सिर्फ उन्हें मारने की ही थी, अपने हाथ को कष्ट देने की नहीं। फिर भी मारते हुए हाथ को कष्ट हुआ, इसलिए वे हाथ दबाने के लिए गये। यह प्रेम का आक्रमण है।

ईसा मसीह नें भी कहा है, "अगर कोई तुम्हारे बायें गाल पर थप्पड़ मार दे तो दायां गाल सामने करो।" यह भी प्रेम का आक्रमण है।

४५. तुकाराम की लड़की की शादी

तुकाराम महाराज के घर लड़की की शादी थी। तुकाराम तो बेचारा भजन-पूजन का काम करता था। उसके पास पैसा नहीं था। लड़की की मां कहती थी, "शादी बिना पैसे कैसे होगी?" इसलिए एक दफा तुकाराम दूसरों के खेत में काम करने के लिए गये। शाम को लौटते वक्त उनको मजदूरी में गन्ने मिले। सिर पर गन्ना रखकर लौटे। गांव के लड़कों से उनको बहुत प्रेम था। एक लड़का आया। उसने एक गन्ना उठा लिया। दूसरा आया, दूसरा गन्ना उठा ले गया। इस तरह

उनके सिर का सारा बोझ खाली हो गया। फिर एक लड़के से वे बोले, "क्यों रे, तू शादी करेगा ?"

लड़के ने कहा, "हां, करूंगा।"

वे बोले, "तो ठीक है।"

वे उस लड़के को लेकर घर गये। घर पहुंचते ही लड़की की मां ने देखा कि मजदूरी करके आये और पास में कुछ नहीं है, तो वह लगी मालिक को गालियां देने—मालिक ने काम तो करवा लिया और मजदूरी नहीं दी। तुकाराम ने कहा, उनको गाली मत दो। उन्होंने तो बहुत गन्ना दिया था।

"तो उसका क्या हुआ ?"

तुकाराम बोले, "तेरे लड़कों ने सब खा लिया। तेरे लड़के हैं न गांव में, उन्होंने खा लिया।"

फिर बोले, "देख, वह लड़का आया है न !" तब लड़की से कहा, "इधर आओ," और लड़की का हाथ उस लड़के के हाथ में दे दिया, कहा, "तुम्हारी शादी हो गई। तुमको शादी में कुछ दहेज देना पड़ेगा न ?" और तुकाराम ने क्या किया ? अपने हाथ से एक भगवद्गीता लिख रखी थी। वह भगवद्गीता लड़के को देते हुए कहा, "यह दहेज में देता हूं।"

वह लड़का मारे खुशी के गांव-भर में घूमकर कह आया, "तुकाराम ने अपनी लड़की के साथ मेरी शादी कर दी और दहेज में भगवद्गीता दी है।"

गांव के लोगों को इस बात का पता चला तो उन्हें लगा कि इस शादी का समारोह होना चाहिए। फिर घूमधाम से वह शादी हो गई।

४६. संत अलवार की महानता

संत अलवार की कहानी है। उसकी झोंपड़ी में उसके सोने-भर की ही जगह थी। बारिश हो रही थी। किसी ने दरवाजे को खटखटाते हुए पूछा, "क्या अंदर जगह है?"

उसने जवाब दिया, "हां, यहां पर एक सो सकता है, पर दो बैठ सकते हैं; जरूर अंदर आइये।"

उसने उस भाई को अंदर ले लिया और दोनों बैठे रहे। इतने में तीसरा व्यक्ति आया और पूछने लगा, "क्या अंदर जगह है?"

संत अलवार ने जवाब दिया, "हां, यहां पर दो तो बैठ सकते हैं, पर तीन खड़े हो सकते हैं, आप भी आइये।"

उसने उस भाई को भी अंदर बुला लिया और तीनों रात-भर कोठरी में खड़े रहे।

उसने अगर यह कहा होता कि 'समाजवाद तो तब होता, जब मेरा मकान बड़ा होता और तभी आपको जगह दी जाती,' तो क्या उसे यह शोभा देता? या अगर वह यह कहता कि मेरी कोठरी छोटी है, मेरे अकेले के ही सोने लायक है, इस हालत में मैं इसे कैसे बांट सकता हूं, अतः अन्य किसी के पास जाइये, तो वह 'संत अलवार' नहीं बनता। वह एक सामान्य नीच मनुष्य ही होता, जिसे मनुष्य कहना भी मुश्किल है।

४७. स्वजनों की खातिर नरक

आपको रामानुज की कहानी मालूम होगी। उनके गुरु ने उनको एक मंत्र दिया और कहा, "चुपचाप एकांत में इसका जाप करो।"

रामानुज ने चंद दिनों तक वैसा ही किया। फिर उन्हें लगा कि यह कोई चोरी का काम नहीं, सो इसे छिपाकर क्यों किया जाये? उन्होंने आम जनता में जाकर उस मंत्र को जाहिर कर दिया और गुरु की आज्ञा भंग करके लोगों से उसका जप करने के लिए कहा। दुनिया में गुरु की आज्ञा को भंग करने से बढ़-कर क्या पातक हो सकता है? लेकिन उन्होंने वैसा ही किया।

जब गुरु को यह मालूम हुआ तो उन्होंने रामानुज से कहा, "तूने यह क्या किया? अब तेरे लिए नरक ही गति है।"

रामानुज ने गुरु से पूछा, "ठीक है कि मेरी गति यह होगी, परंतु जिन्होंने यह मंत्र बनाया, उन लोगों की क्या गति होगी? क्या वे भी नरक में जायेंगे?"

गुरु ने कहा, "नहीं, उनका तो उद्धार होगा।"

इस पर रामानुज ने कहा, "अपने स्वजनों के उद्धार का निमित्त बनकर मुझे नरक जाना पड़े तो मैं उसे बहुत पसंद करूंगा।"

४८. नाम-मात्र ही समर्पण न हो

महाराष्ट्र में नामदेव बहुत बड़े संत हो गये हैं। उनके पिता हमेशा मंदिर में पूजा करते थे। एक दिन नामदेव के पिताजी गैरहाजिर रहे तो पूजा करने का काम नामदेव ने किया। नामदेव ने भगवान की पूजा करके आखिर में भगवान की मूर्ति के सामने नैवेद्य रखा और भगवान से कहने लगे, "यह दूध की कटोरी जो मैंने तुम्हारे सामने रखी है, इसका दूध तुम्हें पीना होगा।"

यह कहकर नामदेव भगवान की राह देखते रहे। उन्होंने तय किया कि भगवान को समर्पण किया हुआ दूध जबतक वे नहीं पीयेंगे, मैं यहां से हटूंगा नहीं। नामदेव का हठ था। आखिर भगवान पिघल गए और नामदेव पर प्रसन्न होकर दूध पी गए।

हम भगवान के पास जाते हैं और कहते हैं, "भगवान, यह तुझे समर्पित है।" हमारा समर्पित किया हुआ नैवेद्य यदि भगवान खाने लगें तो कल से हम समर्पण करना ही छोड़ देंगे। हम तो न खानेवाले भगवान को समर्पण करते हैं। यह नाममात्र का ही समर्पण है।

४९. अपरिग्रही संन्यासी

एक संन्यासी अपने आपको अपरिग्रही कहता था। उसने अपने पास केवल एक तुंबा रखा था। एक दिन उसे प्यास लगी और वह नदी पर गया। साथ में तुंबा लिया। उसके पीछे-पीछे एक कुत्ता भी वहां पहुंचा। कुत्ते ने चट से पानी पिया
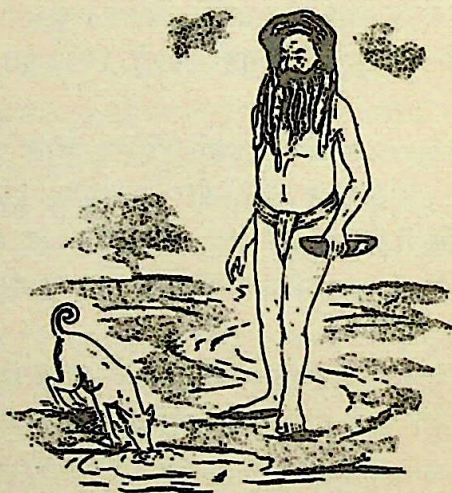
और भाग गया। संन्यासी ने सोचा, 'मैं अपरिग्रही हूं या कुत्ता, क्योंकि वह मेरे बाद में आया और पानी पीकर चला भी गया। इसलिए सच्चा संन्यासी वही है। वही मेरा गुरु है। यह कहकर उसने वह तुंबा नदी को अर्पित कर दिया।

५०. ऋषि और बीमारी

एक बार एक ऋषि बीमार पड़ा। उसने डाक्टर के बजाय चंद्रमा से दवा मांगी। इस पर चंद्रमा ने कहा, "अप्सु मे सोमो अब्रवीत, अयं विश्वानि भेषजः, अग्नि च विश्व संभवः"—गरम और ठंडा पानी पीयो। उसी में सारी वनस्पतियों का सार है। रोग मिटाने के लिए इससे बढ़कर दूसरी दवा नहीं है। वैसा ही करके ऋषि ने आरोग्य लाभ किया।

इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि ऋषि ने अपने-आपको अत्यंत संयमित किया था।

५१. इन्सान होकर भी रोना

महाभारत में एक कहानी है। एक ऋषि था। उसका लड़का रो रहा था, क्योंकि अकाल के कारण खाना नहीं मिल रहा था।

एक कुत्ते ने उस लड़के से पूछा, "तुम क्यों रोते हो ? तुम्हें भगवान ने काम करने के लिए दो हाथ दिये हैं, जो मुझे नहीं दिये। मैं कितनी मुश्किल हालत में हूं, फिर भी रोता नहीं हूं। जिंदगी में कुछ-न-कुछ करता रहता हूं।"

यह सुनकर वह लड़का उठा, खड़ा हुआ और हाथों से काम करने लगा।

५२. प्रेम और आत्मभाव

स्वामी रामतीर्थ की एक कहानी है। वे अमरीका के लिए रवाना हुए। जहाज किनारे पर लगने को हुआ तो लोग उतरने की जल्दबाजी करने लगे, लेकिन वे शांत ही बैठे रहे। यह देखकर एक अमरीकन महिला को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उनसे पूछा, "क्या यहां आपके कोई परिचित हैं ?"

"हां, हैं।" उन्होंने कहा।

उसने पूछा, "कौन ?"

उन्होंने कहा, "आप ही।"

उस वाणी में इतना प्रेम और आत्मभाव था कि उस महिला पर बड़ा गहरा असर हुआ और उसने अमरीका में उनकी काफी मदद की।

५३. एकाग्रता

एक फकीर था। उसके शरीर में तीर चुभ गया। बड़ी वेदना हुई। तीर खींचने की चेष्टा करते तो हाथ लगाते ही वेदना बढ़ जाती थी। इससे वह तीर भी नहीं खींचा जा सकता था। क्लोरोफार्म-जैसी बेहोश करने की दवा उस समय थी नहीं। बड़ी समस्या खड़ी हो गई। कुछ लोग उस फकीर को जानते थे। वे बोले, "तीर अभी मत निकालो। यह फकीर नमाज पढ़ने बैठेगा तब निकाल लेंगे।"

शाम की नमाज का वक्त हुआ। फकीर नमाज पढ़ने

लगा। पल-भर में ही उसका चित्त इतना एकाग्र हो गया कि तीर उसके बदन से निकाल लिया गया, और उसे मालूम ही नहीं हुआ।

कैसी जबर्दस्त है यह एकाग्रता !

५४ भगवदर्पणम्

आंध्र में पोतना नाम के एक भक्त-कवि हो गये हैं। उन्होंने भागवत का तेलुगु में अनुवाद किया। वे किसान थे, खेती करते थे। बहुत ज्यादा संस्कृत नहीं जानते थे, लेकिन कुछ जानते थे, इसीलिए तो अनुवाद कर सके। उन्होंने ग्रंथ लिखा तो उनके मित्रों ने सलाह दी कि यह ग्रंथ राजा को समर्पित कर दो, तो इसका खूब प्रचार होगा।

उन दिनों साहित्य का आदर करनेवाले राजा ही होते थे। परंतु पोतना ने कहा, "मैं सोचूंगा।" और जब उन्होंने समर्पण-पत्रिका लिखी तो उसमें लिखा—"यह भगवान की कृति भगवान को ही अर्पण करता हूं।"

५५. ऋषि का कुल मत देखो

आचार्य-चरित्र में वर्णित चांडाल की कहानी यों है :

आचार्य एक बार काशी जा रहे थे और उसी रास्ते पर एक चांडाल चला जा रहा था। उन्होंने उसे हट जाने को कहा।

चांडाल ने उनसे पूछा, "महाराज, अपने अन्नमय शरीर से

मेरे अन्नमय शरीर को आप परे हटाना चाहते हैं या अपने में स्थित चैतन्य से मेरे अंदर के चैतन्य को ?"

शरीर किसी का हो, वह स्पष्टत: गंदगी की गठरी है और आत्मा तो सर्वत्र एक और अन्यतम रूप से शुद्ध है। ऐसी स्थिति में अस्पृश्यता किसकी और किसलिए ? यह उसके प्रश्न का भाव है। पर इतना कहकर ही वह चांडाल चुप नहीं रहा। उसने फटकार और आगे बढ़ाई, "गंगाजल के चंद्रमा और हमारे हौज के चंद्रमा में कुछ अंतर है ? सोने के कलसे के आकाश में और हमारे मिट्टी के घड़े के आकाश में कोई फर्क है ? आत्मा सर्वत्र एक ही है न ? फिर यह ब्राह्मण और यह अंत्यज का भेद-भ्रम आपने कहां से निकाला—'विप्रोऽयं श्वपचोऽयमित्यपि महान् कोऽयं विभेदभ्रम:' ?"

इतनी फटकार सुनकर आचार्य के कान ही नहीं, आंखें भी खुल गईं। नम्रता से उसे नमस्कार करके बोले, "आप सरीखा मनुष्य, फिर चाहे वह चांडाल हो या ब्राह्मण, मेरे लिए गुरु के स्थान पर है—'चांडालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम'।"

५६. राजा को उपदेश

एक राजा था। वह शेखसादी के पास पहुचा और बोला, "मुझे कुछ बोध दीजिए।"

शेखसादी ने पूछा, "आप कौन हैं ?"

वह बोला, "मैं राजा हूं।"

शेखसादी ने कहा, "अच्छी बात है। आप रात को सोते तो होंगे ही?"

"सोता तो हूं, लेकिन कम।"

शेखसादी ने कहा, "हमारी सलाह है कि आपको रात में खूब सोना चाहिए।"

फिर पूछा, "दिन में भी सोते हैं?"

राजा बोला, "खास नहीं, कभी-कभी एक-आध घंटे सो लेता हूं।"

शेखसादी बोले, "आपको दिन में भी खूब सोना चाहिए।"

रात में सोना और दिन में भी सोना—राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, "आज तक हमें ऐसा उपदेश किसी ने नहीं दिया, आप क्यों दे रहे हैं?"

शेखसादी ने समझाया कि लोगों को राजा बहुत पीड़ा देते हैं, इसलिए वे जितना सोते रहें, उतना ही अच्छा। जागने पर तो वे लोगों को पीड़ा ही देते हैं।

५७. दीनबन्धु का सर्वोदय

दीनबन्धु एंड्रूज की कहानी मशहूर है। उनके पास एक नौकर था। वे उसे ४० रुपये तनख्वाह देते थे। दो-चार महीने के बाद एंड्रूज ने नौकर से पूछा, "तुम्हें यह रुपया कम तो नहीं पड़ता? क्या कुछ और बढ़ाऊं?"

उसने कहा, "हां, ज्यादा नहीं, थोड़ा बढ़ा दीजिए।"

फिर कुछ दिन बाद उन्होंने नौकर को बुलाया और पूछा कि

क्या पैसे की जरूरत है ?

उसने कहा, "हां, एक बच्चा पैदा हो गया है।"

उन्होंने रुपये बढ़ा दिये। यह सिलसिला चलता रहा। वे नौकर को बुलाते, नौकर मांगता और वे तनख्वाह बढ़ा देते थे। आखिर नौकर ने हाथ जोड़कर कहा, "महाराज, अब मुझे रुपयों की जरूरत नहीं है। मेरा पेट भर गया।"

दीनबन्धु की इसी विशेषता के कारण लोग उन्हें अपने ही घर का आदमी समझते थे। कितनी महान सेवा थी उनकी !

५८. जग में जीना है दो दिन का

कुरान में लुकमान की कहानी है। लुकमान सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहा। उससे पूछा गया कि तू कितने रोज जिया ? वह बोला, "चंद रोज ही जिया हूं।"

पूछा गया लुकमान से तू जिया कितने रोज ?
दस्ते हसरत मलके बोला—चंद रोज।

सैंकड़ों साल जीवित रहा। पर उसे यही मालूम हुआ कि चंद रोज ही जिंदा रहा। इस दुनिया में हमें चंद रोज ही रहना है, यह समझकर जो बरतते हैं, वे महापुरुष होते हैं। उनको इस दुनिया के विषय-भोग में रस नहीं रहता।

× × ×

पैगंबर नूह की कहानी है। उनकी दस-बीस हजार साल की आयु थी। वे एक छोटी-सी झोंपड़ी में रहते थे। किसी ने उनसे पूछा, "आप कोई अच्छा पक्का मकान क्यों नहीं बनाते ?"

पैगंबर नूह ने क्या कहा? वोले, "अरे, जीना कितना है! वीस हजार साल ही जीना है। उसके लिए क्या पक्का मकान बनाना?"

यानी पैगंबर नूह को बीस हजार साल की जिंदगी में भोग भोगने की इच्छा नहीं हुई। उन्होंने सोचा, 'यह देह जानेवाली चीज है। वीस हजार साल जीये तो भी क्या? आखिर तो जानेवाली ही है न? यह सार वस्तु नहीं है, निस्सार है।' यों समझकर पैगंबर नूह ने अपना जीवन परमेश्वर और जनता की सेवा में बिता दिया।

५९. भगवान के दर्शन

मुहम्मद पैगंबर की एक सुंदर कहानी है। एक दफा वे ध्यान-समाधि में मग्न थे। ईश्वर का दर्शन चाहते थे तो ईश्वर ने उन्हें एक पत्र लिखकर दिया। मुहम्मद पैगंबर पढ़ना नहीं जानते थे, इसलिए उन्होंने परमेश्वर से प्रार्थना की कि मैं अपढ़ हूं, इसलिए मुझे आपके दर्शन चाहिए। फिर ईश्वर ने स्वयं आकर उन्हें दर्शन दिये।

इसके बाद मुहम्मद पैगंबर लोगों को यह कहानी सुनाकर कहते थे कि अगर मैं पढ़ा-लिखा होता तो मुझे ईश्वर का दर्शन नहीं मिलता, सिर्फ ईश्वर का पत्र ही देखने को मिलता। मैं पढ़ा-लिखा नहीं था, इसीलिए मुझे ईश्वर के दर्शन हुए।

किसानों की एक सभा में यह कहानी सुनाकर हमने एक सवाल पूछा कि आप लोग खेतों में खुद मेहनत करते हैं,

अच्छी तरह हल चलाकर खेतों को तैयार करते हैं, उस पर सूर्यनारायण की धूप पड़ती है और फिर आप परमेश्वर के दर्शन की राह देखते हैं। आप लोगों में से जिन लोगों ने ईश्वर के दर्शन किये हों, वे हाथ उठायें।

कुल किसानों ने अपने हाथ उठा दिये। एक भी किसान ऐसा नहीं निकला, जिसे यह शंका हुई हो कि मुझे ईश्वर के दर्शन हुए हैं या नहीं। उनको दर्शन हो ही चुके हैं। बारिश जब होती है, तब साक्षात भगवान दर्शन के लिए ही नहीं, बल्कि स्पर्श के लिये भी आये ही हैं, ऐसा उनको भास होता है। परंतु यह दर्शन जिन्हें नहीं होता, वे शिक्षित कहलाते हैं। ऐसे शिक्षितों से भगवान हमको बचाये।

६०. भगवान को स्मरण रखें

कुरान में एक कहानी आती है। एक बार मुहम्मद पैगंबर अपने दो अनुयायियों के साथ जा रहे थे। उनके पीछे एक बड़ी भारी सेना उन्हें पकड़ने के लिए भागी आ रही थी। जब उन्होंने देखा कि सेना एकदम नजदीक आ गई और अब हमला कर ही देगी तो वे तीनों एक गड्ढे में उतर गये। अनुयायी घबड़ा गये तो पैगंबर ने उनसे कहा, "हम तीन नहीं, चार हैं और वह चौथा सबसे श्रेष्ठ और जबदरस्त है। वही हमारे साथ है। पर दीखता नहीं। फिर भी हम तीन नहीं, चार हैं, यह ध्यान में रखो।"

६१. यह भगवद कृपा नहीं

एक बार एक आदमी घर छोड़कर यात्रा के लिए निकल पड़ा। उसके पास एक भी पैसा नहीं था। जब वह लौटा तो कहने लगा, "भगवान ने सब पूरा कर दिया, कुछ भी कमी या कष्ट नहीं हुआ।"

उससे पूछा गया, "यह कैसे हो पाया ?"

वह कहने लगा, रास्ते में चलते समय सामने एक बैलगाड़ी जा रही थी। उस पर मूंगफली के बोरे लदे थे। एक बोरे में छेद हो गया था। उसमें से धीरे-धीरे मूंगफली नीचे गिरती जाती थी और मैं उठाकर खाता जाता था।"
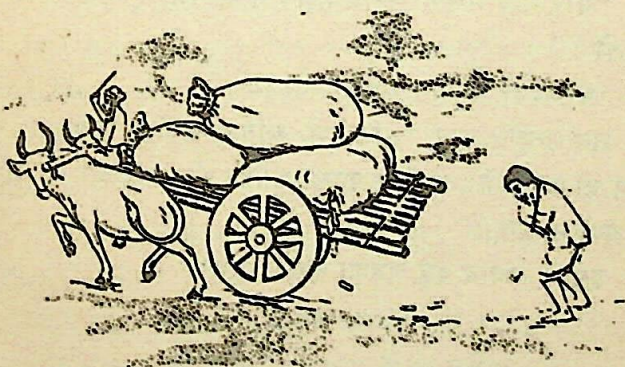
मैंने उससे कहा, "भलेमानस, इसमें भगवान की कृपा हुई, यह कैसे समझ बैठे ? उल्टे उस गाड़ीवान को आगाह कर देना तुम्हारा काम था !"

६२. परमेश्वर से ही अपील क्यों न करें

टाल्स्टाय की एक कहानी है। एक लड़के ने देखा कि पड़ोस में कुछ लड़कियां बैठी रो रही हैं। जांच करने पर मालूम हुआ कि अदालत में उनके विरुद्ध कोई फैसला हुआ है।

लड़के ने उन लड़कियों के पिता से पूछा, "क्या आप तहसील की अदालत में अपील करेंगे ?"

उन्होंने कहा, "वहां भी अगर विरुद्ध निर्णय हुआ तो ?"

"जिला अदालत में जाइये।" लड़के ने कहा।

"और अगर जिला अदालत में अनुकूल फैसला न हो तो ?"

"तो मास्को जाइये।"

"और यदि मास्को की अदालन में भी अनुकूल फैसला न हो तो ?"

"परमेश्वर के पास अपील कीजिये।"

तब उन्होंने कहा, "यदि मुझे अंतिम अपील परमेश्वर के पास ही करनी है तो फिर पहली अपील भी परमेश्वर के पास ही क्यों न करूं ?"

इसका जवाब वह लड़का नहीं दे सका।

६३. दिल का दिया जलायें

एक था आदमी। वह हर रोज हनुमानजी की पूजा करने आता था। सर्दी, वर्षा, गर्मी में भी बराबर आता था। एक दिन मैंने उससे पूछा, "क्यों जी, इस काम में इतनी नियमितता क्यों बरतते हो?"

उसने कहा, "मैंने हनुमानजी से मनौती मानी थी। मुझ पर मुकदमा चल रहा था। मैंने मन-ही-मन भगवान से मनाया कि प्रभो, यह मुकदमा जीत जाऊंगा, तो आपके पास आकर नित्यप्रति दिया जलाया करूंगा। मैं वह मुकदमा जीत गया। तभी से इतने वर्ष हो गए, नित्य दिया जलाता हूं।"

मैंने पूछा, "वह मुकदमा क्या था?"

उस बेचारे ने खुले दिल से मुझे सब-कुछ बता दिया। उसने किसी की जमीन दबा ली थी। इसके विरोध में उस भूमिहीन ने मुकदमा दायर कर दिया। अदालत में कागज की माया चलती है। बेचारे भूमिहीन के पास वे कहां से आते? इधर इसे वकील अच्छा मिल गया और यह मुकदमा जीत गया।

फिर कहने लगा, "मुझ पर भगवान की कृपा हुई।"

मैंने कहा, "भलेमानस, यह कृपा है या अकृपा!"

लेकिन वह इसे कृपा ही समझ बैठा है। बरसों से हनुमानजी के सामने दिया जलाता है; पर दिल का दिया नहीं जला पाया। बुरी वासना सफल होती है तो वह भगवान की कृपा नहीं, अकृपा है। शुद्ध वासना पूरी हो, तभी समझना चाहिए कि अब भगवान की कृपा है।

६४. भगवान की कृपा

एक कहानी और सुन लें। एक और आदमी था। उसने तय किया कि रात में शराब पीने जाऊंगा। लेकिन सीढ़ी उतरते समय गिर पड़ा और उसकी हड्डी टूट गई। उसे अस्पताल पहुंचाया गया। अस्पताल से उसका पत्र आया कि भगवान की मुझ पर बड़ी कृपा हुई कि हड्डी टूट गई, जिससे मैं मद्यपान से बच गया।

६५. प्रेम की ताकत

पनवार में हमारे आश्रम के एक भाई नामदेव ने दो-चार गायें पालीं। बाजार के लिए उसे एक दिन सेलू जाना पड़ा। शाम को नामदेव वापस लौटा और गाय दुहने के लिए बैठा तो गाय ने दूध नहीं दिया। उसने काफी कोशिश की। तब उसने पूछा, "आज गाय को क्या हो गया है ?"

जवाब मिला, "कुछ भी तो नहीं। पता नहीं, दूध क्यों नहीं देती ? बछड़ा भी तो बंधा हुआ था। इसलिए वह भी दूध नहीं पी सका होगा।"

अंत में नामदेव ने पूछा, "किसी ने उसे मारा-पीटा तो नहीं ?"

एक भाई ने कहा, "हां, मारा तो था।"

नामदेव ने कहा, "बस, तो वह इसीलिए दूध नहीं देती।"

फिर नामदेव गाय के पास पहुंचा। उसने उसके शरीर पर

हाथ फेरा, उसे पुचकारा। तब गाय कुछ देर के बाद दूध के लिए तैयार हो गई।

६६. प्रेम की भाषा

प्रेम की भाषा सब समझते हैं। बैल भी समझता है। जानवर भी प्रेम पहचानते हैं। जो प्रेम करता है, उससे वे भी प्रेम करते हैं। एंड्रोक्लीज और सिंह की कहानी आप जानते ही होंगे। सिंह ने उससे कितना प्यार किया! एंड्रोक्लीज गुलाम था, उसे फांसी की सजा हुई। गुलाम को फाड़कर खाने के लिए भूखा सिंह उस पर छोड़ा गया। गुलाम के पास पहुंचते ही सिंह को ध्यान आता है कि यह तो हम पर उपकार करने-वाला व्यक्ति है। हम जंगल में थे और हमारे पैर में कांटा धंस गया था, पैर सूज गया था, उसमें पीप भी पड़ गया था और बहुत वेदना हो रही थी। इसी गुलाम ने कांटा निकाला था। यह वही है। यह ध्यान में आते ही वह भूखा सिंह कुत्ते की तरह एंड्रोक्लीज के पैर चाटने लगा। जानवर भी प्रेम पहचानते हैं।

हमें प्रेम की भाषा सारे हिंदुस्तान में फैलानी है।

६७. निंदा-स्तुति जन की, वार्ता वधू-धन की

'दुनिया पैदा करें', ब्रह्माजी की यह इच्छा हुई। इसके अनुसार कारबार शुरू होनेवाला था कि उनके मन में आया, 'अपने काम में भला-बुरा बतानेवाला कोई रहे तो बड़ा मजा रहेगा।' इसलिए आरंभ में उन्होंने एक तेज-तर्रार टीकाकार गढ़ा और उसे यह अख्तियार दिया कि आगे से मैं जो-कुछ गढ़ूंगा, उसकी जांच का काम तुम्हारे जिम्मे रहा। इतनी तैयारी के बाद ब्रह्माजी ने अपना कारखाना चालू किया।

ब्रह्माजी एक-एक चीज बनाते जाते और टीकाकार उसकी चूक दिखाकर अपनी उपयोगिता सिद्ध करता जाता। टीकाकार की जांच के सामने कोई चीज बे-ऐब ठहर ही न पाती। "हाथी ऊपर नहीं देख पाता, ऊंट ऊपर ही देखता है, गधे में चपलता नहीं है, बंदर अत्यंत चपल है।" यों टीकाकार ने अपनी टीका के तीर छोड़ने शुरू किये। ब्रह्माजी की अक्ल गुम हो गई। फिर भी उन्होंने एक आखिरी कोशिश कर देखने की ठानी और अपनी सारी कारीगरी खर्च करके 'मनुष्य' गढ़ा।

टीकाकार उसे बारीकी से निरखने लगा। अंत में एक चूक निकल ही आई। "इसकी छाती में एक खिड़की होनी चाहिए थी, जिससे इसके विचारों को सब समझ पाते।"

ब्रह्माजी बोले, "तुझे रचा, यही मेरी एक चूक हुई, अब मैं तुझे शंकरजी के हवाले करता हूं।"

यह पुरानी कहानी कहीं पढ़ी थी। इसके बारे में सिर्फ

एक ही शंका है। वह यह कि कहानी के वर्णन के अनुसार टीकाकार शंकरजी के हवाले हुआ नहीं दीखता। शायद ब्रह्माजी को उस पर दया आ गई हो, या शंकरजी ने उस पर अपनी शक्ति न आजमाई हो। जो हो, इतना सच है कि आज उनकी जाति बहुत फैली हुई पाई जाती है।

गुलामी के जमाने में कर्तव्य बाकी न रह जाने पर वक्तृत्व को मौका मिलता है। काम की बात खत्म हुई कि बात का ही काम रह जाता है, और बोलना ही हो तो नित्य नवे विषय कहां खोजे जायें? इसलिए एक सनातन विषय चुन लिया गया—'निंदा-स्तुति जन की, वार्ता वधू-धन की।' पर निंदा-स्तुति में भी तो कुछ बाट-बखरा होना चाहिए। निंदा अर्थात पर-निंदा और स्तुति अर्थात आत्म-स्तुति। ब्रह्माजी ने टीकाकार को भला-बुरा देखने को तैनात किया था। उसने अपना अच्छा देखा, ब्रह्माजी का बुरा। मनुष्य के मन की रचना ही कुछ ऐसी विचित्र है कि दूसरे के दोष उसको साफ उभरे हुए दिखाई देते हैं, गुण नहीं दिखाई देते।

६८. मुझसा बुरा न कोय

एक बहन से कोई बुरा काम शायद हो गया। उसकी जांच करके न्याय देने के लिए पंच बैठे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वहां श्रवण-भक्त भी काफी तादाद में जुट गए होंगे। किंतु विशेषता यह हुई कि उस बहन का सद्भाग्य ईसा को वहां खींच लाया। पंचों ने फैसला दिया, "इस बहन ने घोर

अपराध किया है। सब लोग पत्थरों से मारकर इसे शरीर से मुक्त कर दें।"

फैसला सुनते ही लोगों के हाथ फड़कने और आस-पास के ढेले थर-थर कांपने लगे। भगवान ईसा को उन ढेलों पर दया आई। उन्होंने खड़े होकर सबसे एक ही बात कही, "जिसका मन बिल्कुल साफ हो, वह पहला ढेला मारे।"

जमात जरा देर के लिए ठिठक गई। फिर धीरे-धीरे वहां से एक-एक आदमी खिसकने लगा। अंत में वह अभागिन और भगवान ईसा ही रह गए। भगवान ने उसे थोड़ा उपदेश देकर प्रेम से विदा किया।

यह कहानी और नीचे का दोहा हमें सदा ध्यान में रखना चाहिए :

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न दीखा कोय।
जो घट खोजा आपना मुझ-सा बुरा न कोय॥

६९. भगवान के बेटों को न सताओ

संत पाल की एक कहानी बड़ी मशहूर है। इस ईसाई संत ने ईसाई धर्म का खूब प्रचार किया था। वह पहले कोई महा-पंडित और ईसाइयत का घोर विरोधी था।

ईसा के शिष्य बिल्कुल सीधे-सादे और गरीब हुआ करते थे। कोई मछुआ था तो कोई बुनकर। मछुओं से ईसा ने कहा, "कम एंड फॉलो मी एंड आई विल मेक यू फिशर्ज आव मैन।"—तुम मेरे पिछे आओ, मैं तुम्हें मछुआ नहीं,

मनुष्य-मार बनाऊंगा। वे अपना जाल छोड़कर ईसा के पीछे हो लिया।

ईसा के शिष्य एक के बाद एक मारे और सताये जाते थे। यह पाल ही, जो पहले 'साल' था, उन्हें बहुत सताता था। एक बार ईसा के अनुयायी कहीं जा रहे थे और पाल उनको सतानेवाला था।

उसे पहली ही रात नींद नहीं आई और सपने में भगवान आकर बोले, "सॉल, सॉल, व्हाई डू यू परसीक्यूट मी ?"— सॉल-सॉल, तुम मुझे क्यों सताते हो ?

सॉल ने कहा, "तुझे तो मैं नहीं सता रहा हूं। तुझे कब सताया है ?"

तब ईसा बोले, "तू मेरे लड़के को सताता है तो मुझे ही सताता है।"

यह वाक्य उसने सुना और दूसरे दिन उसका परिवर्तन हो गया। वह सॉल से पाल होकर ईसा का ऐसा श्रेष्ठ शिष्य बना, जिसके दिल में भगवान आ विराजे।

७०. मन जीते जग जीते

सिकंदर का पहला आक्रमण पंजाब पर हुआ। पोरस ने उसका मुकाबला किया। यद्यपि पोरस हार गया, सिकंदर जीता, तथापि उसकी वह जीत नाम-मात्र की जीत थी। उसके सिपाही थककर चूर हो गए। उन्होंने हिंदुस्तान में आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। लाचार होकर सिकंदर को

पंजाब से वापस लौट जाना पड़ा।

सिकदर जब वापस जा रहा था, उसे जंगल में पेड़ के नीचे बैठा हुआ एक फकीर मिला, जो अपनी मस्ती में गा रहा था।

सिकंदर ने उससे पूछा, "तुम कौन हो?"

"मैं दुनिया का बादशाह हूं।" उसने जवाब दिया।

सिकन्दर उसका जवाब सुनकर स्तब्ध रह गया। उसे लगा कि मैंने लाखों रुपया खर्च किया, इतनी बड़ी सेना का संगठन किया, जिंदगी-भर मेहनत की, फिर भी पूरी दुनिया को जीतने में कामयाब नहीं रहा और एक यह शख्स है, जो अपने-आपको दुनिया का बादशाह बताता है।

सिकन्दर ने फकीर से फिर पूछा, "तुमने ऐसा क्या काम किया, जिससे इतनी मस्ती आ गई?"

फकीर ने वही बात कही, जो गुरु नानक ने 'जपुजी' में कही है। 'मन जीते जग जीते' अगर दुनिया को फतह करना चाहते हो तो मन को जीतो। दुनिया की बादशाही का यही रहस्य है।

७१. "साथ नहीं कुछ जाना रे......"

सिकन्दर यहां से क्या ले गया? हीरे, पन्ने माणिक, मोती!...नहीं, वह यह कुछ भी नहीं ले गया। वह इन सबको पत्थर के टुकड़े समझकर छोड़ गया और हिंदुस्तान से ले गया जीवंत हीरे!

महमूद गजनवी की कहानी मशहूर है। उसने भी

हिंदुस्तान पर आक्रमण किया था। वह यहां से धन-संपत्ति आदि वहुत-कुछ लूटकर ले गया। उसने उन सबकी अलग-अलग कोठरियां बनवाईं। लेकिन आखिर एक दिन वह आया, जब यमराज उसे ले जाने के लिए आ पहुंचे। मौत के समय गजनवी को एक बार फिर वह सारी संपत्ति दिखाई गई। उसे देखकर और यह सोचकर कि सारी संपत्ति मुझे यहीं छोड़ जानी है, वह बहुत रोया और रोते-रोते मर गया।

महमूद गजनवी नासमझ था और सिकन्दर था समझदार, इसलिए सिकंदर हिंदुस्तान के वास्तविक हीरों यानी विद्वानों को अपने देश ले गया। उसका देश ग्रीस था। ग्रीस में पहले भी विद्या थी। यूरोप में पहले अंधकार था। उस तरह का अंधकार ग्रीस में नहीं था। वहां पंडित थे, विद्या थी। लेकिन सिकंदर जब यहां से और विद्वानों को ले गया तो वहां शिक्षा में बहुत तरक्की हुई।

७२. सिकंदर और डाकू

सिकंदर बादशाह की एक कहानी है। एक डाकू को पकड़कर उसके सामने लाया गया। सिकन्दर ने डाकू से पूछा, "तू क्या करता है ?"

डाकू ने कहा, "तू जो करता है, वही मैं करता हू।"

इस पर सिकन्दर ने कहा, "तेरी और मेरी बराबरी ही क्या ? मैं तो बादशाह हूं।"

डाक बोला, "तू जो काम करता है वही मैं भी करता हूं।

लेकिन तू सफल हुआ और मैं नहीं, फर्क इतना ही है। चोर तू भी है और मैं भी, परंतु तू सफल चोर है, इसलिए लोगों
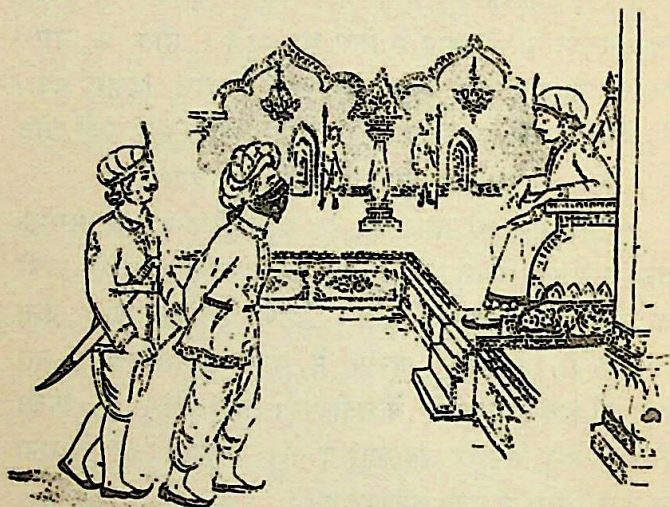
के सिर पर बैठा है और मैं असफल चोर हूं, इसलिए तेरे सामने खड़ा हूं। फिर भी तू मन में यह भली-भांति समझ ले कि तेरी और मेरी स्थिति एक समान है।"

यह सुनकर सिकन्दर अवाक् रह गया।

७३. साथ खाते नहीं, मिलकर लड़ेंगे कैसे ?

पानीपत के मैदान में अफगानों और मराठों की जो लड़ाई हुई उसकी एक कहानी है। अहमदशाह अब्दाली बहुत बड़ा जनरल था। वह मराठों की रसद तोड़कर फिर हमला करना चाहता था। कई दिनों तक दोनों फौजें आमने-सामने डटी रहीं। अब्दाली हमला नहीं कर रहा था। एक दिन शाम को टहलते हुए उसने देखा कि मराठों की फौज में जगह-जगह छोटे-छोटे अलाव जल रहे हैं। उसने अपने सरदार से पूछा, "यह क्या है ?"

सरदार ने कहा, "ये लोग एक-दूसरे के हाथ का नहीं खाते, इसलिए अलग-अलग रसोई पक रही है।"

अहमदशाह ने कहा, "ऐसा है, तब तो मैंने इन्हें जीत ही लिया।" और वही हुआ।

जो एक-दूसरे के हाथ का नहीं खायेंगे, एक-दूसरे से परहेज करेंगे, एक-दूसरे को नीच समझेंगे, वे कंधे-से-कंधा लगाकर लड़ेंगे कैसे ?

७४. आपस में लड़े और खत्म

सुन्द और उपसुन्द नाम के दो भाई थे। बहुत वीर थे। दोनों ने दुनिया को कब्जे में कर लिया। जब भगवान ने देखा कि ये बहुत बलवान हो रहे हैं तो उनकी तरफ तिलोत्तमा को भेजा।

तिलोत्तमा बहुत सुंदर थी। वह आई और दोनों के सामने

नाचने लगी। सुन्द कहने लगा, "मैं इससे शादी करूंगा" और उपसुन्द कहने लगा, "मैं इससे शादी करूंगा।"

दोनों आपस में लड़ने लगे। दोनों के हाथ में गदा थी। सुन्द ने गदा मारी उपसुन्द को और उपसुन्द ने गदा मारी सुन्द को। दोनों के सिर फट गए और दोनों मर गए। तिलोत्तमा का राज्य हो गया।

इसी तरह अहिंसावाले बचेंगे और उनका राज्य होगा। हिंसा करनेवाले लड़ते रहेंगे और खत्म हो जायेंगे।

७५. आया चोरी करने, गया साधु बनके

एक गांव में चोर आया। हर घर में खूब केले, आम, रोटी थी, परंतु पैसे नहीं थे। फिर चोर को लगा कि अरे, ये सब तो ले जा नहीं सकूंगा, परंतु मेहनत की है तो पेट-भर खा तो लूं; और उसने खाना शुरू कर दिया।

यह देखकर घर की औरत बोली, "अरे, भाई, रात में क्यों आये? दिन में आते तो क्या नहीं देती? हमारे यहां अन्न की कोई कमी नहीं है। ठहरो, मैं तुमको दूध ला देती हूं।"

बेचारा चोर चोर बनकर आया, लेकिन साधु बनकर वापस गया। गांव का प्रेमी भक्त बन गया। उसको यह भी कह दिया गया कि भाई, तुमको काम चाहिए तो काम भी है, आ जाओ।

७६. गांव अपने स्वरूप को पहचानें

शेर के बच्चे की एक प्रसिद्ध कहानी है। एक शेर के बच्चे को गांववालों ने पकड़ लिया और पाला-पोसा। उसे वे भेड़ों के साथ जंगल ले जाते और उन्हीं के साथ चराते-खिलाते। एक दफा जंगल में एक शेर ने भेड़ों पर हमला करके एक भेड़ को पकड़ लिया। शेर के बच्चे ने वह सारा नाटक देखा। फिर उसने अपने शरीर की तरफ देखा और हमला करनेवाले के शरीर की तरफ देखा तो उसे आत्मज्ञान हुआ कि मैं भेड़ नहीं, शेर हूं।

आज हमारे देहातों की हालत यह है कि वे शेर हैं, परंतु भेड़ बने हुए हैं। गांवों को अपने स्वरूप को पहचानना चाहिए।

७७. श्रद्धा हो तो बेड़ा पार

ज्ञानी गुरु की कहानी मशहूर है। उसका शिष्य किसी काम से जंगल में होकर जा रहा था। रास्ते में जोर की बारिश आई। शिष्य वापस लौट आया और गुरु से पूछने लगा कि जोर से बारिश आ रही है, रास्ते में नाले मिलेंगे, उन्हें कैसे पार कर सकूंगा।

गुरु ने कहा, "भगवान का नाम लेकर।"

शिष्य को गुरु पर असीम श्रद्धा थी। उसने पानी पर चलते समय अत्यंत श्रद्धा से गुरु के नाम का स्मरण किया और तर गया। बाद में यह खबर गुरु को मिली। गुरु खुश हो गया।

दूसरे दिन गुरु भी जाने लगा। उसे लगा कि मेरे नाम से

शिष्य तर गया, तो मैं भी तर जाऊंगा। गुरु पानी के पास आया तो उसके मन में शंका उत्पन्न हुई कि क्या सचमुच मैं पानी पर से जा सकूंगा ? शंका हुई और गुरु डूब गया। शिष्य बच गया क्योंकि वह श्रद्धावान था।

७८. श्रद्धा नहीं तो बेड़ा गर्क

एक साधु था। उसने अपने चेले से कहा, "राम-नाम जपने से मनुष्य हर संकट से पार हो सकता है।" गुरु-वाक्य पर शिष्य को श्रद्धा तो थी, लेकिन पूरा-पूरा विश्वास नहीं था कि राम-नाम चाहे जिस संकट से उबार देगा।

एक बार उसे नदी पार करनी थी। वह बेचारा अर्ध-श्रद्धालु राम-नाम रटता हुआ नदी पार करने लगा। जैसे-तैसे गले तक पानी में गया और वहां से गोते खाता हुआ बड़ी मुश्किल से वापस आ गया। गुरु से कहने लगा, "लगातार नाम-स्मरण किया, लेकिन पानी कम नहीं हुआ। सब अकारथ गया।"

गुरु बोला, "अनेक बार नाम-स्मरण किया, इसलिए अकारथ गया। अगर नाम-स्मरण में श्रद्धा थी तो एक बार किया हुआ नाम-स्मरण तुझे काफी क्यों नहीं लगा? श्रद्धा कम थी, इसीलिए तूने बार-बार नाम-स्मरण किया और इसीलिए गोते खाए।"

७९. शादी का अर्थ : कल्याणम्

एक था राक्षस। वह अकेला रहता था। एक दिन वह बाजार में गया। वहां उसने आम खरीदे। पके-मीठे आम खाकर बड़ा प्रसन्न हुआ और फिर लौटकर घर आ गया।

कुछ समय बाद उसकी शादी हो गई। बाल-बच्चे भी हो गए। एक दिन वह फिर बाजार गया। आम खरीदे, पर इस बार वह स्वयं वहां न खा सका। आमों को घर ले आया। बच्चों को दिए। बच्चों ने वे आम बड़ी मौज से खाए। राक्षस को इसी में बड़ा संतोष हुआ।

पहले वह अकेला था, किंतु घर में खानेवाले बढ़ गए तो शादी से क्या लाभ हुआ? दूसरे की चिंता करने का अभ्यास हुआ। इसीलिए शादी को तमिल में 'कल्याणम्' कहते हैं।

८०. निर्भय बनो

एक राक्षस की कहानी है। उसने एक मनुष्य को गुलाम के रूप में अपने पास रखा। राक्षस जो भी खिदमत कराता उस मनुष्य को करनी पड़ती थी। थककर बैठते ही राक्षस कहता, "अरे, तू रुक क्यों गया? मैं तुझे खा जाऊँगा।"

हमेशा उसकी यह धमकी सुनते-सुनते वह मनुष्य थक गया। आखिर उसने तय किया कि एक दिन मरना ही है तो राक्षस की धमकी क्यों सुनूं? इसलिए उसने तय किया और कह दिया, "अच्छा, तू मुझे खायगा तो खा जा!"

राक्षस ने यह सुना तो चुप हो गया, क्योंकि वह यदि उसे खा जाता तो फिर नौकर कहां मिलता! इसलिए उसने मनुष्य से कहा, "देख, तू थक गया है। कुछ देर आराम कर ले।"

मनुष्य समझ गया कि राक्षस डराता है। मैं डरूँगा तो यह और ज्यादा डरायगा। मैं डरूँगा तो यह जुल्म करेगा। जुल्म करने वाला हावी हो जाता है। इसलिए मरने से क्यों डरूँ?

८१. मीठा बोलिए

एक ज्योतिषी था। उसके पास एक भाई अपना भविष्य पूछने आया। ज्योतिषा ने बताया, "आपके कुल रिश्तेदार आपके जीते-जी मर जायंगे।" यह सुनकर वह बहुत दुःखी हुआ। गुस्सा भी आया उसे कि यह ज्योतिषी ऐसी अभद्र भाषा बोलता है।

फिर वह दूसरे के पास गया। दूसरे ज्योतिषी ने उसे बताया, "आपका नसीब बहुत अच्छा है। बहुत लंबी आयु है आपकी।"

अर्थ तो वही हुआ, भाषा दूसरी है। जैसी भाषा होगी, वैसा ही असर भी होगा।

८२. तीर्थ में नहाने से पवित्रता नहीं आती

एक अमीर यात्रा के लिए निकला। उसके साथ एक गरीब नौकर भी था, जो रसोई बनाकर उसे खिलाता था। उस अमीर ने दो-चार साल घूमकर सारे भारत की यात्रा की। सब तीर्थों में नहाकर घर पहुंचा तो उसके नौकर ने उसे एक ऐसी तरकारी खिलाई, जिसमें बहुत बदबू आती थी।

मालिक ने पूछा, "तुमने क्या खिला दिया ?"

नौकर ने जवाब दिया, "मैंने आपको बड़ी पवित्र तरकारी खिलाई है। जब हम यहां से निकले थे तो अपने साथ आलू लेते गए थे। आपने जिस तीर्थ में स्नान किया, मैंने आलुओं को भी वहां नहलाया। गंगा में डुबोया, जमना में डुबोया, कावेरी में डुबोया और फिर उस आलू की तरकारी आपको खिलाई। यह गन्दी नहीं, बहुत पवित्र है। आप सब तीर्थों का स्नान कर चुके तो क्या आप गन्दे हैं ?"

सुनते ही मालिक समझ गया कि इसने मुझे अच्छा सबक सिखाया। तीर्थों में नहाने से कोई पवित्र नहीं हो जाता। पचासों तीर्थों में नहाना एक बात है, दिल का पवित्र होना दूसरी बात।

८३. गुस्से से धर्मयुद्ध खत्म

खलीफा उमर की कहानी है। एक भाई से उनका द्वंद्व चल रहा था। दोनों मजबूत थे। आखिर लड़ते-लड़ते खलीफा उमर की फतह के आसार दीखने लगे। एक मौका आया, जब उसकी छाती पर खलीफा चढ़ बैठे। तलवार ऊपर उठा ली। उसे मारनेवाले ही थे कि जिसकी छाती पर चढ़े बैठे थे, उसने उनके मुंह पर थूक दिया। दूसरे ही क्षण खलीफा उमर ने अपनी तलवार खींच ली और उठ बैठे।

साथियों ने उनसे पूछा, "यह आपने क्या किया? वह अच्छी तरह आपके हाथ में आ गया था। कत्ल करने के बजाय आपने उसे ऐसे ही क्यों छोड़ दिया?"

इस पर उमर ने जो जवाब दिया, वह बड़ा ही सुंदर है। उन्होंने कहा, "जब उसने थूका तो मुझे गुस्सा आ गया और गुस्सा आ जाने से वह धर्मयुद्ध नहीं रहा, इसलिए मैंने उसे छोड़ दिया।"

छोटी-सी कहानी है, पर इससे बड़ी अच्छी नसीहत मिलती है।

८४. गीता सबका आधार

एक बार न्यायमूर्ति रानडे के पास एक मिशनरी पहुंचे। उन्होंने देखा कि उनके पास जितनी पुस्तकें रखी हुई हैं, उनमें सबसे ऊपर बाइबिल है। इससे वे बड़े प्रसन्न हुए और रानडे से कहने लगे, "बड़ी खुशी की बात है कि आपने सबसे ऊपर

बाइबिल को रखा।"

रानडे उनके आशय को समझ गए और जवाब देते हुए बोले, "हां, ऊपर तो वाइबिल है, उसके नीचे दूसरे ग्रंथ हैं, लेकिन उन सभी का आधार गीता है।"

८५. अमंगल कुछ नहीं

एक मनुष्य था। उसे अपना घर बुरा मालूम हुआ। उसे छोड़कर वह एक गांव में गया। गांव में भी उसे गंदगी दिखाई दी। वहां से वह जंगल में चला गया। आम के एक पेड़ के नीचे बैठ गया। ऊपर से एक पक्षी ने सिर पर बीट कर दी। जंगल में अमंगल है, ऐसा कहकर वह नदी में जाकर खड़ा हो गया। वहां बड़ी मछलियां छोटी मछलियों को खा रही थीं। यह देखकर वह सिहर उठा। सोचा, सारी सृष्टि ही अमंगल-भरी है, छुटकारे का एकमात्र उपाय मर जाना ही है। इस निश्चय से वह बाहर निकला और चिता बनाने लगा। उधर से एक आदमी आया और उससे पूछने लगा, "जान क्यों देता है भाई?"

उसने जवाब दिया, "यह संसार गंदा है, इसलिए।"

उस सज्जन ने कहा, "जब तेरा यह गंदा शरीर, यह चर्बी यहां जलने लगेगी तो कितनी बदबू फैलेगी? हम यहां बगल में ही रहते हैं, कहां जायंगे? किसी का एक बाल जलता है तो कितनी दुर्गंध फैलती है, जरा यह तो सोचो।"

तब वह आदमी तंग आकर कहने लगा, "इस दुनिया में न

जीने की सुविधा है, न मरने की।"

तात्पर्य यह है कि अमंगल समझकर सभी से दूर रहने की कोशिश करोगे तो फजीहत होगी।

८६. जब मराठों ने लड़ाई जीत ली

मुझे मराठों के इतिहास की घटना याद आती है। गोह के कमंद की मदद से मराठे सिंहगढ़ पर चढ़ गए। लड़ाई में तानाजी मारे गए। उसके मारे जाते ही मराठों की सेना हिम्मत हारकर भागने लगी और जिस रस्से के बल चढ़कर वह ऊपर आई थी, उसी के सहारे नीचे उतरने का इरादा करने लगी। तब तानाजी के छोटे भाई सूर्याजी ने उस रस्से को काट डाला और चिल्लाकर कहने लगे, "मराठो, भागते कहां हो ? वह रस्सा तो मैंने पहले ही काट डाला है।"

मराठों की फौज ने सोचा कि चाहे लड़ें चाहे भागें, मरना दोनों ही तरफ से है तो फिर लड़कर क्यों न मरें।

वे बहादुरी से लड़े और सिंहगढ़ को जीत लिया।

८७. दोष की जड़ उखाड़िए

इंग्लैंड के इतिहास की एक सुंदर कहानी है। लंदन में प्लेग फैला और कई साल तक चलता रहा; खत्म होने का नाम ही न ले। फिर ऐसा हुआ कि एक साल लंदन में आग लगी और बहुत सारा हिस्सा जल गया। बस, प्लेग भी खत्म हो

गया, क्योंकि नये मकान बने और साफ हवा आने-जाने लगी।

इसी तरह प्लेग-जैसी चीजें समाज से हटाने के लिए कभी-कभी पुरानी रचना को आग लगानी होती है। उस समाज-व्यवस्था को कायम रखने से काम नहीं होता। मूल में दोष हुआ तो जड़ ही उखाड़नी पड़ती है।

८८. ग्रामराज्य की बुनियाद

एक गांव था। वहां कसाई लोग रहते थे। वे वहां के बकरे को शेफिल्ड की छुरी से काटते थे। फिर आ गया स्वराज्य; तो तय हो गया कि अब शेफिल्ड की छुरी से बकरे नहीं काटे जायेंगे, अलीगढ़ की छुरी से काटे जायेंगे। परंतु बकरे तो चिल्लाते ही रहे। कसाई कहने लगा, "अरे मूर्ख, अब क्यों चिल्लाता है? अब तू शेफिल्ड की छुरी से नहीं काटा जा रहा, अलीगढ़ की छुरी से काटा जा रहा है।"

क्या यह सुनकर बकरा खुश होगा? स्वराज्य दिल्ली में आया, इससे कुछ नहीं होता। मैं धूप में घूम रहा हूं। मुझे बहुत प्यास लगी है, बहुत दुखी हो रहा हूं। एक पेड़ के नीचे प्यास के मारे बैठ जाता हूं। मित्र कहता है, "अरे, पांच मील की दूरी पर ही नदी है।" थोड़ा चल लेता हूं। मित्र फिर कहता है, "अरे, अब तो नदी दो मील की दूरी पर ही है। क्यों रोता है? पहले पांच मील पर थी, तब तो रोना ठीक था, लेकिन अब तो दो मील पर ही है।"

नदी पांच मील की जगह दो मील दूर रह जाये तो क्या

प्यास बुझ जायेगी ? प्यास तो तब शांत होगी, जब पानी पेट में जायेगा। नदी दस हाथ की दूरी पर रहे तो भी प्यास नहीं मिटेगी। स्वराज्य भी इसी तरह जब सब लोगों के अनुभव में आयेगा, तभी गांव-गांव में पहुंचेगा, तभी गांव-गांव में स्वराज्य आयेगा।

ग्रामदान ही ग्राम-राज्य की बुनियाद है।

८९. पुरुषार्थी अकबर

अकबर बादशाह की एक प्रसिद्ध कहानी है। उसके एक गुरु बड़े ज्ञानी थे। अच्छी तालीम देते थे। जब अकबर की उम्र १४ साल की हो गई तो उसने सोचा कि कब तक तालीम लेता रहूंगा। मैं १४ साल का हो गया हूं। सिंहासन फिर भी खाली है।

अकबर का बाप उसके बचपन में ही मर गया था। राजा के बदले गुरु राज्य का कारोबार देखते थे और अकबर को तालीम देकर उसे राजा बनाने वाले थे। लेकिन अकबर के मन में यह विचार आने लगा कि मैं कबतक तालीम लेता रहूंगा। एक दिन वह उठा और दरबारहाल की ओर चल पड़ा। सिपाही द्वार पर खड़े थे। उन्होंने दरवाजा खोल दिया और राह दे दी। वह सीधा गया और राजसिंहासन पर बैठ गया और वहां के नौकरों को हुक्म दिया, "अब मैं राजा बन गया हूं। तुम्हें मेरा हुक्म मानना होगा।"

नौकरों ने पूछा, "क्या आज्ञा है ?"

अकबर ने कहा, "उस गुरु को जेल में डाल दो।"

नौकरों ने हुक्म के अनुसार काम किया और गुरुजी को जेल में डाल दिया। गुरुजी बड़े प्रसिद्ध भक्त थे। अकबर के मन में उनके प्रति आदर था। अकबर ने बारह-तेरह दिन अच्छी तरह राजकाज किया और फिर एक दिन गुरु से मिलने जेल में पहुंचा। उसने गुरु से कहा, "आप हमें क्षमा कीजिए। हमसे रहा नहीं गया, आखिर कबतक पुरुषार्थ के बिना रहते? आज से आप मुक्त हैं। हम आपसे सलाह-मशवरा करते रहेंगे। मैं आपका प्यार और मदद इसी रूप में चाहता हूं।"

गुरु ने कहा, "तुमने जो किया, ठीक ही किया। लेकिन अब मैं तीर्थ-यात्रा के लिए जाना चाहता हूं। मुझे जाने दो।"

अकबर ने गुरुजी की यात्रा का अच्छा इंतजाम कर दिया और गुरुजी यात्रा पर चले गए।

चौदह साल के अकबर के दिल में यह कसक थी कि पुरुषार्थ के बिना वह अपना जीवन कैसे बिताये? इधर तो १३ गुणे २ बराबर २६ या २५ की उम्र होती है तो भी तालीम खत्म नहीं होने पाती!

९०. कल्पवृक्ष

कल्पवृक्ष के नीचे एक मनुष्य बैठा था। गरमी के दिन थे। उसे प्यास लगी। उसके मन में विचार आया कि यहां थोड़ा पानी मिल जाये तो अच्छा रहे। इतने में एक घड़े में ठंडा-मीठा निर्मल पानी आ गया। उसने पानी पी लिया। फिर उसके

मन में विचार आया कि यहां खाना भी मिल जाये तो कितना अच्छा रहे। तत्काल खाने की थाली सामने आ गई। फिर वह सोचने लगा कि यहां सोने के लिए भी कुछ मिल जाये तो बड़ा अच्छा रहे। उसी समय एक पलंग उसके सामने आ गया। तब वह सोचने लगा कि यह क्या चमत्कार है? यहां कोई भूत तो नहीं है? एकदम उसके सामने भूत आ खड़ा हुआ। फिर उसके मन में आया कि कहीं यह भत मुझे खा न जाये? उसी समय भूत ने उसे खा लिया।

जनता भी कल्पवृक्ष है। उससे जैसी आशा करोगे, वैसा ही पाओगे
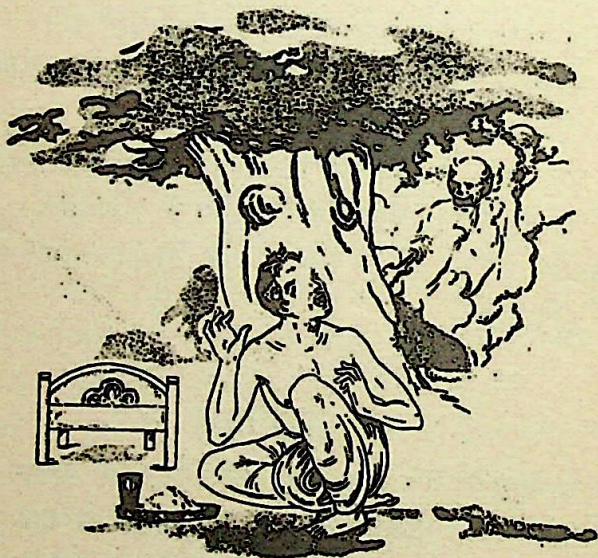
९१. समझाने का उत्तम तरीका

एक बार एक गुरु के पास एक शिष्य पहुंचा। शिष्य ने कहा, "आत्मा क्या है, हम जानना चाहते हैं।" गुरु शांत रहे। शिष्य ने दोबारा पूछा, फिर भी गुरु शांत रहे। इस तरह तीन बार पूछा गया और तीनों बार गुरु शांत रहे तो चौथी बार शिष्य ने कहा, "हमने तीन-तीन बार पूछा और आपने उत्तर नहीं दिया।"

गुरु ने कहा, "हमने तीन-तीन बार उत्तर दिया और ऐसे उत्तम तरीके से दिया कि इससे बेहतर तरीका नहीं हो सकता था तो भी तू नहीं समझा। जो चुप से नहीं समझता, वह बोलने से कैसे समझेगा ?"

९२. मालिक स्वयं गुलाम

एक मालिक था। उसे प्यास लगी तो नौकर का नाम लेकर चिल्लाने लगा। नौकर ने कहा, "जी हां, आता हूं।" लेकिन वह काफी देर तक नहीं आया। मालिक तो खुद उठकर अपने हाथ-पांव का इस्तेमाल कर नहीं सकता था, क्योंकि मालिक जो ठहरा! इसलिए प्यासा पड़ा रहा। अगर वह खुद उठे और ढूंढ़कर पानी लाये तो मालिक कैसा ? जब एक घंटे के बाद नौकर आया, तब उसे पानी मिला। इस तरह वह मालिक अपने नौकर का गुलाम बना हुआ था।

९३. ठोकर खाने की स्वतंत्रता

एक आदमी दवा खाते-खाते ऊब गया, क्योंकि 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की।' अंत में किसी की सलाह से उसने खेत में काम करना शुरू किया। उससे निरोग होकर थोड़े ही दिनों में हृष्ट-पुष्ट हो गया। अनुभव से सिद्ध हुई यह आरोग्य-साधना वह लोगों को बतलाने लगा। किसी के हाथ में शीशी देखता तो वह उसे उत्साहपूर्वक उपदेश देता, "शीशी से कुछ होने-जाने का नहीं। हाथ में कुदाल लो तो चंगे हो जाओगे।"

लोग कहते, "तुम तो शीशियां पीकर तृप्त हुए बैठे हो और हमें मना करते हो।"

दुनिया का ऐसा ही हाल है। दूसरों के अनुभव से कुछ भी सीखने की मनुष्य की इच्छा नहीं होती। उसे निजी अनुभव चाहिए। इसीका नाम है ठोकर खाने की स्वतन्त्रता।

९४. अंतरंग का शृंगार है—चातुर्य

कोई रसिक और सौंदर्यप्रेमी कलाकार एक बार पंढरपुर जाकर विठोबा के दर्शन कर आया और आकर मुझसे बोला, "विठोबा के सारे भक्त उनके रूप की प्रशंसा करते नहीं अघाते, उनकी बकवास सुन-सुनकर तो जी ऊब गया। लेकिन मुझे तो उस मूर्ति को देखकर कहीं भी सुंदरता का ख्याल नहीं आया। एक निरा बेडौल पत्थर नजर आया। मूर्तिकार और भक्तजन दोनों, मुझे तो ऐसा लगता है कि 'जाकी रही भावना जैसी' से

ही संतुष्ट हो गए। पंचतंत्रवाले किस्से में जिस तरह उन तीनों धूर्तों ने बार-बार कहकर बकरे को कुत्ता बना दिया, ठीक उसी तरह इन लोगों ने चिल्ला-चिल्लाकर एक बेडौल पत्थर में सुंदरता की सृष्टि का ढोंग रचा दिया।"

मैंने जवाब दिया, "हां, यही बात है। इस संसार की भीमा नदी में गोते खानेवालों को उबारने का जिसने प्रण किया हो, उसे तो मजबूत, दृढ़, ठोस और हट्टा-कट्टा ही होना चाहिए। वह यदि शेष-शय्या पर लेटनेवाले या पंचायतन का ठाठ जमा-कर तसवीर खिंचवाने के लिए आसन लगानेवाले देवता की सुंदरता का अनुकरण करे तो क्या यह शोभा देगा ?"

रामदास ने सिखाया है, 'मनुष्य का शृंगार है—चातुर्य, वस्त्र तो केवल बाहरी सजावट है। दोनों में कौन-सा श्रेष्ठ है, इसका विचार करो।'

९५. जेल में अपराधी सुधरते नहीं

हमने भी अपने जीवन के पांच वर्ष जेल में बिताये हैं। हमें याद है कि एक चोर-कैदी का जेल में रहते-रहते अन्य कैदियों से प्रेम हो गया। सजा की अवधि समाप्त होने पर जब वह जेल से बाहर जाने लगा तो उसने देखा कि उसके साथी दुखी हैं। उनके आंसू निकल रहे हैं। वह उन्हें सांत्वना देता हुआ बोला, "फिकर न करो, मैं एक हफ्ते के अंदर-अंदर फिर तुम्हारे पास आता हूं।"

और मैंने देखा कि वह एक हफ्ते में फिर जेल में आ गया।

उसे जेल की बैरक के साथियों के पास आने के लिए फिर अपराध करना पड़ा। इस प्रकार जेल में जाकर मनुष्य सुधरते नहीं, स्वभाव से चोर बनते हैं, पक्के चोर!

९६. घोड़ा और आदमी

पुराने जमाने में आदमी और घोड़ा अलग-अलग रहते थे। कोई किसी के अधीन न था। एक बार आदमी को जल्दी का काम आ पड़ा। उसने थोड़ी देर के लिए घोड़े से उसकी पीठ किराये पर मांगी। घोड़े ने भी पड़ोसी-धर्म सोचकर आदमी का कहना स्वीकार कर लिया।

आदमी ने कहा, "लेकिन तेरी पीठ पर मैं यों नहीं बैठ सकता। तू लगाम लगाने देगा, तभी बैठ सकूंगा।"

लगाम लगाकर मनुष्य उसपर सवार हो गया और घोड़े ने भी थोड़े समय में काम बना दिया। अब करार के मुताबिक घोड़े की पीठ खाली होनी चाहिए थी, पर आदमी से लोभ नहीं छूटता। वह कहता है, "देख भाई, तेरी यह पीठ मुझसे छोड़ी नहीं जाती, इसलिए तू इतनी बात माफ कर। हां, तूने मेरी खिदमत की है और आगे भी करेगा, इसे मैं कभी नहीं भूलूंगा। इसके एवज में मैं तेरी खिदमत करूंगा। तेरे लिए घुड़साल बनाऊंगा, तुझे दाना-घास दूंगा, पानी पिलाऊंगा, खरहरा करूंगा, जो कहेगा, वह करूंगा। पर छोड़ने की बात मुझसे न कहना।"

घोड़ा बेचारा कर ही क्या सकता था? जोर से हिनहिना-

कर उसने अपनी फरियाद भगवान के दरबार में पेश की। घोड़ा त्याग चाहता था, आदमी दान की बातें कर रहा था। भले आदमी, कम-से-कम अपना यह करार तो पूरा होने दे!

९७. लक्ष्मी की चाह न करो

लक्ष्मीदेवी का स्वयम्बर था। सारे लोग शरीक होने गये। लक्ष्मीदेवी हार लेकर निकलीं। राजा लोग बैठे थे। किसके गले में हार पड़ेगा, किससे शादी होगी, गरदनें उचकाये राजा लोग देख रहे थे।

लक्ष्मीदेवी ने कहा, "जिसको मेरी इच्छा नहीं, मैं उसको हार पहनाऊंगी।"

सब भाग गये। तब वह ढूंढ़ने निकली। पर मिला कौन ? भगवान विष्णु क्षीरसागर में शेषनाग पर सोये थे। लक्ष्मी वहां पहुंची। पांव के पास बैठी। विष्णु नें परवाह न की। लेकिन लक्ष्मी भी ऐसी बैठी कि उठी ही नहीं। क्योंकि भगवान इच्छा नहीं करते। इससे यही समझना चाहिए कि लक्ष्मी उसको मिलती है जो उसकी इच्छा नहीं करता।

९८. यह है भारत का हृदय !

एक गरीब विधवा बुढ़िया थी। उसका एक खेत था। वह किसी तरह दूसरों के जरिये खेत में बुवाई करवा लेती थी; परंतु फसल उगने पर उसकी रखवाली नहीं कर पाती थी। एक दफा वह मेरे पास अपने दुख की कहानी सुना रही थी कि पंछी आकर फसल खा जाते हैं; लेकिन आखिर में उसने एक वाक्य जोड़ दिया—"पंछी ईश्वर के बच्चे हैं, इसलिए थोड़ा खा लेते हैं, आखिर उनका भी तो हक है।"

दरिद्र बुढ़िया भी पक्षियों के खाने का हक कबूल करती है।

एक दफा मैं सुबह घूमने निकला। मैंने देखा कि एक किसान मचान पर बैठा है; पर उधर पक्षी फसल खा रहे हैं। मैंने उससे पूछा, "क्यों रे भाई, क्या करता है ? सो रहा है ?"

" सो नहीं रहा हूं।"

"पर पक्षी तो फसल खा रहे हैं। तू उड़ाता क्यों नहीं ?"

"हां, उड़ाऊंगा। जरा सुबह का समय है। सूर्यनारायण उग रहे हैं। खा लेने दो इन्हें भी !"

यह है भारत का हृदय !

९९. सोने का क्या मूल्य है ?

एक गांव में गांववाले एक शख्स का हाथ पकड़कर मैं मुश्किल रास्ते से जा रहा था। उसके हाथ में सोने की अंगूठी थी, जो मुझे चुभ रही थी। मैंने उससे कहा, 'तुम्हारी अंगूठी मुझे तकलीफ देती है।' तो उसने अंगूठी निकालकर जेब में डाल ली।

दूसरे भाई ने उससे कहा, "क्या तुम बात का इशारा नहीं समझे ?"

आखिर वह समझ गया और उसने अंगूठी मुझे देना चाही।

मैंने कहा, "सोना मनुष्य को भ्रम में डालनेवाली चीज है। इससे क्या पैदा होता है? इस सोने को खेत की मेंड़ पर रखें और उस पर पानी गिरते-गिरते उसका थोड़ा-सा हिस्सा मिट्टी में मिल जाये तो क्या मिट्टी में फसल आ सकती है ?"

उसने कहा, "मैंने ऐसी बातें सिर्फ संतों की जुबानी ही सुनी थीं।"

फिर मैंने पूछा, "क्या यह बात जंचती है ?"

उसने कहा, "हां।"

और जब मैंने कहा कि क्या मैं अंगूठी फेंक दूं तो उसने स्वीकृति दे दी। मैंने अंगूठी जंगल में फेंक दी और देखा कि उसे दुख होने के बजाय उसपर एक किस्म की मस्ती थी। उसने भूदान-यज्ञ में बहुत काम किया था।

१००. देशभक्ति की परिभाषा

एक बार मैं रेल से जा रहा था। यमुना के पुल पर गाड़ी आई। पास बैठे एक आदमी ने बड़े पुलकित हृदय से उसमें एक धेला डाल दिया। पड़ोस में एक आलोचक महाशय बैठे थे। कहने लगे, "देश पहले ही कंगाल है और ये लोग व्यर्थ पैसा फेंकते हैं।"

मैंने कहा, "आपने उसके हेतु को पहचाना नहीं। जिस भावना से धेला फेंका उसकी कीमत दो-चार पैसे तो होगी ही। यदि किसी दूसरे सत्कार्य के लिए पैसे दिये होते तो यह दान और भी अच्छा होता। किंतु इस बात का विचार बाद में करेंगे। उस भावनाशील मनुष्य ने तो इसी भावना से प्रेरित होकर यह त्याग किया कि यह नदी नहीं, ईश्वर की करुणा ही बह रही है। इस भावना के लिए आपके अर्थशास्त्र में क्या कोई स्थान है? देश की एक नदी को देखकर उसका अंतःकरण द्रवित हो उठा। यदि इस भावना की आप कद्र कर सकें तो मैं आपकी देशभक्ति को सराहूंगा।"

देशभक्ति का अर्थ क्या केवल रोटी है? देश की महान नदी को देखकर यदि यह भावना मन में जागती है कि अपनी सारी संपत्ति इसमें डुबो दूं, इसके चरणों में अर्पित कर दूं, तो यह कितनी बड़ी देशभक्ति है! यह सारी धन-दौलत, सब हरे-पीले पत्थर, कीड़ों की बिष्ठा से बने मोती और कोयले से बने हीरे, इन सबकी कीमत पानी में डुबो देने लायक ही है। परमेश्वर के चरणों के आगे इस सारी धूल को तुच्छ समझना चाहिए।

१०१. सारी दुनिया भगवान है

पनवार में कोटि बाबा भंगी का काम करते थे। उस वक्त मैं जेल में था। छूटने के बाद मैंने उनसे पूछा, "आपका काम कैसा चल रहा है?"

उन्होंने कहा, "पहले कुछ साथी थे। बाद में वे छूट गए, अब मैं अकेला हूं। जब साथी थे, तब ऐसा लगता था कि सत्संग हो रहा है। लेकिन अब अकेला हूं तो भगवान की सेवा में लगा हूं। मैं भक्त हूं, सारी दुनिया भगवान है, ऐसा महसूस करता हूं।"

१०२. एक-दूसरे के स्वभाव को समझिये

हम जेल में थे, तब बड़े-बड़े लोग हमारे साथ थे। मैं शाम को आठ बजे सो जाता और सुबह तीन बजे उठता था। दूसरे लोग रात को एक बजे सोते और सुबह आठ बजे उठते थे। न वे आलसी थे, न मैं आलसी था। सबको सात घंटे नींद मिलती थी। मैं तीन बजे उठकर सोचता था कि ये लोग तीन बजे सोये हैं, इसलिए अगर अभी जोर से भजन गाऊंगा तो क्या भगवान प्रसन्न होंगे? मैं मौन रहता था।

वे महानुभाव भी सज्जन थे। रात को उनकी जागने की आदत थी। इसलिए जागते तो थे, पर वे सोचते कि यह विनोबा सो गया है तो हमें शांति रखनी चाहिए।

हम दोनों ने दोनों को संभाला और एक-दूसरे को समझ-

कर बर्ताव किया। अगर हम सब अपनी-अपनी करनेवाले होते तो क्या लाभ होता ? मैं अपने मन की करता, वे अपने मन की। फिर तो जीवन में मजा ही न रहता। इसलिए स्वभाव-भेद के कारण अलग-अलग हो जाना बिलकुल व्यर्थ है, नादानी है।

१०३. सजीव चित्र-कला

एक बार मैं अपने एक मित्र के घर गया। वह मित्र पैसे-वाला था। उसने पचास रुपये में एक सुंदर चित्र खरीदा था। उस चित्र के रंग वह मुझे दिखा रहा था। एक जगह बहुत ही सुहावना गुलाबी रंग था। उसे दिखाकर वह बोला, "कितना सुंदर है ? क्यों !"

मैंने जवाब दिया, "ऊं हूं।"

उसनें कहा, "शायद आपकी चित्र-कला में रुचि नहीं है ?"

मैंने उससे कहा, "भलेमानस, मेरी चित्र-कला में खूब रुचि है। सुंदर चित्रों को देखने में मुझे अपार आनंद आता है। लेकिन चित्र सुंदर ही नहीं है। मुझे चित्र-कला से प्रेम है, उच्च चित्र-कला की मैं कद्र करता हूं। तुम्हारी अपेक्षा मुझे चित्र-कला का अधिक ज्ञान है। मैं उसका मर्म समझता हूं। इस चित्र का वह गुलाबी रंग सुंदर है। लेकिन मैं तुमसे दूसरी ही बात कहता हूं। इस चित्र के तुमने पचास रुपये दिये। जरा हरिजनों की बस्ती में जाकर देखो। वहां तुम फीके चेहरेवाले बच्चे पाओगे। रोज सवेरे जाओ, सिर्फ पंद्रह मिनट चलना

पड़ेगा। रोज एक सेर दूध लेकर जाया करो। फिर एक महीने के बाद उन लड़कों के मुंह देखो। उन स्याह और फीके रंगवाले चेहरों पर गुलाबी रंग आ जायेगा। खून की मात्रा बढ़ने से चेहरे पर लाली आ जायेगी। अब तुम्हीं बताओ, इस निर्जीव चित्र में जो गुलाबी रंग है, वह श्रेष्ठ है या वह, जो उन जीवित चित्रों में दिखाई देगा? वे बालक भी इस चित्र-जैसे सुंदर दीख पड़ेंगे। मेरे भाई, ये जीवित कला के नमूने मरते जा रहे हैं। इन निर्जीव चित्रों को लेकर चित्र-कला के उपासक होने की डींग मारते हो और इस महान दैवी कला को मिट्टी में मिलने देते हो।"

१०४. दूसरे का अधिकार समझिये

हम आश्रम में रहते थे। मेरे पास एक घड़ी थी। एक दिन एक शख्स मेरे पास आया और कहने लगा, "मुझे घड़ी चाहिए।"

मैंने कहा, "यह सिद्ध करो कि तुमको मुझसे ज्यादा घड़ी की जरूरत है।"

वह बोला, "आप तो आश्रम में ही रहते हैं। आपको कहीं बाहर नहीं जाना पड़ता। समय-समय पर आश्रम की घंटी भी बजती है। इससे आपको कुछ तो समय मालूम हो ही जाता है। परंतु मुझे दूर शहर में काम के लिए जाना पड़ता है। मेरे पास घड़ी नहीं है। इसलिए मैं समय पर नहीं जा सकता।"

मैंने कहा, "ले लो।"

वह आदमी घड़ी ले गया। दूसरे ही दिन एक दूसरा शख्स आया। काफी देर तक बातें होती रहीं। उसने अपनी जेब से घड़ी निकाली, मुझसे पूछा, "आपकी घड़ी में क्या बजा है?"

उसको लगा कि बाबा के पास घड़ी होगी। मैंने कहा, "मेरे पास घड़ी नहीं है।"

कहने लगा, "आपके पास घड़ी नहीं है!"

फिर वह अपनी घड़ी मेरे पास रखकर चला गया।

कुछ दिनों के बाद वह पहला शख्स मुझसे मिलने के लिए आया। उसने मेरे पास घड़ी देखी, परंतु वह था हाथ-घड़ी। वह बोला. "आप तो हाथ में घड़ी नहीं बांधेंगे। मुझे शहर जाना पड़ता है, यह रिस्टवाच मेरे लिए अच्छी रहेगी।"

मैंने कहा, "ठीक है।"

उसने मेरी पहली घड़ी मेरे पास रख दी और उस हाथ-घड़ी को लेकर चला गया।

तात्पर्य यह कि जब तक कोई चीज मेरे पास है, तबतक मेरी है, परंतु अगर किसी को उसकी ज्यादा आवश्यकता है और वह सिद्ध कर देता है तो उस चीज पर उसका हक हो जाता है।

१०५. पराया बेटा भगवत्स्वरूप

अपनी मां का एक किस्सा याद आता है। मेरे पिताजी अपने घर में हमेशा बाहर के किसी-न-किसी एक लड़के को लाकर रख लेते थे। उस लड़के को ठीक घर के जैसा ही रखा जाता था। उसी तरह उसका खाना-पीना, अध्ययन आदि

होता। पिताजी को तो पुण्य-प्राप्ति होती थी, लेकिन सारी सेवा मां को करनी पड़ती थी। घर में कभी-कभी रोटी बच जाती तो ठंडी रोटी पहले मां खा लेती थी, उसके खाने से जो बचती, वह मुझे देती थी। लेकिन उस लड़के को हमेशा ताजी रोटी मिलती थी। उसको कभी ठंडी रोटी नहीं दी जाती थी।

मैं कभी-कभी मां से मजाक कर लेता था। वही थी, जिससे मैं मजाक कर सकता था। मैं मजाक में कहता, "अभी तेरा भेद-भाव मिटा नहीं। मुझे दोपहर की रोटी देती है और उस लड़के को ताजी रोटी खिलाती है।"

इसपर उसने जो जवाब दिया, सुनकर मैं निहाल हो उठा। उसने कहा, "वह मुझे भगवत्स्वरूप दीखता है और तू मुझे पुत्रस्वरूप। तुझमें मेरी आसक्ति है। तेरे लिए मेरे दिल में पक्षपात है ही। तू भी जब मुझे भगवत्स्वरूप दीखेगा, यह भेद-भाव नहीं करूंगी।"

१०६. डाक्टर भगवान और औषधि गंगाजल

मुझे बचपन का एक किस्सा याद आ रहा है। बचपन में मैं बहुत रोगग्रस्त रहता था और खूब डाक्टरी दवाएं दी जाती थीं। मां दवा देते समय कहने के खातिर कहा करतीं, "औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणोहरिः।"

मैं भी इसको दुहरा दिया करता। लेकिन एक दिन इसका अर्थ खयाल में आया और मैंने मां से कहा, "इसका अर्थ तो यह लगता है कि गंगा-जल को औषधि समझो और भगवान को

वैद्य।"

वे बोलीं, "यह अर्थ तो ठीक है, लेकिन इसके लिए वैसी योग्यता चाहिए। तेरे और मेरे लिए इसका अर्थ दूसरा है।"

मैंने पूछा, "कौन-सा ?"

मां ने उत्तर दिया, "डाक्टर को भगवान समझो और जो भी औषधि वह दे, उसे गंगाजल।"

१०७: श्रुति माता की गोद में

बहुत साल पहले की बात है। १९१८ में सारे भारत में भीषण इंफ्लूएंजा फैला। करोड़ों उसके शिकार हुए और सात लाख लोग तो मर ही गये। मैं उससे दो साल पहले १९१६ में ही परमात्मा की खोज में घर से निकला था। जब घर छोड़ा तो 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' यही वाक्य मेरी जबान पर था और आज भी वही मेरी जबान पर है, दूसरा वाक्य नहीं।

१९१८ में जब मेरी माताजी इंफ्लूएंजा की उस महामारी की शिकार हुईं तो घरवालों ने मुझे कोई खबर नहीं दी। जब मेरे भाई ने पूछा कि क्या विन्या को बुलाया जाये तो मां ने कहा, "घर में सब तो बीमार पड़े ही हैं। केवल तू और विन्या बचा है। यहां आने पर कहीं उसे भी यह रोग लग न जाये, इसलिए उसे बुलाने की कोई जरूरत नहीं।"

ऐसा होता है संतान के प्रति माता का प्रेम। मैंने उसी महामारी में मां को खोया और मां की मृत्यु के ही दिन ऋग्वेद का अध्ययन आरंभ कर श्रुति माता की गोद का आसरा ग्रहण किया।

१०८. यंत्रवत्

हमारे एक गणित के प्रोफेसर थे, जो बहुत अच्छा पढ़ाते थे। एक बार मैंने उनसे एक सवाल पूछा तो वे एकदम चौंक गये। उन्होंने कहा, "इसका जवाब कल दूंगा, आज नहीं दे सकता।"

उन्होंने फिर हंसते हुए कहा, "तुमने ऐसा सवाल पूछा, जो इससे पहले किसीने नहीं पूछा था। इसपर सोचना पड़ेगा।"

फिर उन्होंने बताया, "तुम्हें मेरी एक खूबी मालूम नहीं है। मैं पढ़ाता जाता हूं और साथ ही नींद भी ले लेता हूं, क्योंकि पढ़ाते-पढ़ाते अब सारा कंठस्थ हो गया है।"

रास्ता अच्छा हो तो बैलगाड़ीवाला सो जाता है। बैल चलते रहते हैं। अगर १०-१० गाड़ियां कहीं जा रही हों तो शायद पहला गाड़ीवाला जागता रहे, बाकी सारे सो जाते हैं। उस दिन भेद खुला। गणित का प्रोफेसर पढ़ाते-पढ़ाते यंत्रवत हो जाता है।

१०९. शाकाहारी हरिण

हमारे आश्रम में एक हरिण था। जब-जब खाने की घंटी बजती, हम उसे खिलाते थे। घंटी सुनकर वह भी आ जाता था। उसे भान हो गया था कि घंटी बजने पर खाने के लिए जाना चाहिए। एक रोटी हम उसे खिलाते थे।

एक दिन जिस आटे की रोटी बनी, उसमें घी डाला गया था। हमेशा वैसी रोटी नहीं बनती थी। उस दिन जब रोटी

उसके सामने रखी गई तो उसने सूंघ लिया, खाया नहीं। हमेशा की तरह विना घी की रोटी बनाकर उसे खिलानी पड़ी।
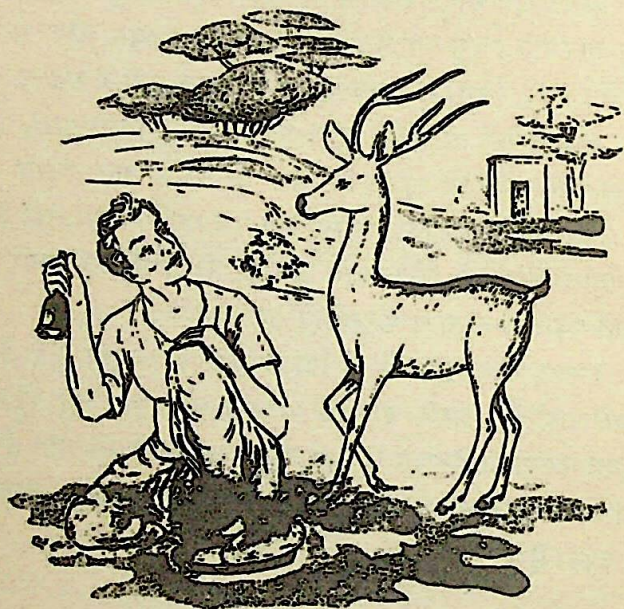
मतलब यह कि वह शाकाहार में हमसे आगे बढ़ा हुआ था।

११०. मां का दिल

एक मां के पांच बच्चे थे। पांचों खेलने के लिए गये। उनमें से एक कहीं खो गया। उससे मां को बहुत परेशानी हुई। रात-दिन उसका नाम ले-लेकर मां रोने लगी। चारों

लड़कों को भी उसकी तलाश में भेजा गया। आखिर वह मिल गया। मां खुश हो गई। मां को खुश होते देखकर चारों लड़कों ने पूछा, "हम चारों तुम्हारे पास थे, तब भी तुम्हें उतनी खुशी नहीं थी, जितनी अब हो रही है। इसका कारण क्या है ? क्या तुम भी पक्षपात करती हो ?"

मां ने जवाव दिया, "मेरे बच्चो, यह पक्षपात नहीं, मां का दिल है। अभी तुमलोग मां के दिल को पहचानते नहीं। तुम चारों मेरे पास थे, सुखी थे। लेकिन जो मेरे पास नहीं था, वह दुखी था। उसका दुख मेरा दुख; और उसका सुख मेरा सुख है।"

१११. धर्मनिरपेक्ष राज्य ही श्रेष्ठतर

एक सत्पुरुष की कहानी है। उसने भक्ति के लिए एक मंदिर बनवाया। लेकिन उसने देखा कि उसमें सिर्फ हिंदू ही आते हैं, मुसलमान नहीं आते। उन दिनों वहां पर मुसलमानों का राज्य था। उसने सोचा कि मुसलसान नहीं आते हैं, यह ठीक नहीं। इसलिए उसने मंदिर की बना दी मस्जिद तो मुसलमान बड़े प्यार से आने लगे। किंतु हिंदुओं ने आना छोड़ दिया।

वह सत्पुरुष दुखी हुआ और सोचने लगा कि क्या करना चाहिए। अंत में उसने मस्जिद तोड़कर पाखाना बना दिया। सपर बादशाह गुस्सा हो गया। मंदिर से मस्जिद बनाई तब उसे गुस्सा नहीं आया। बादशाह ने सत्पुरुष से पूछा तो उसने जवाब दिया, "इसका परिणाम देखो, तब तुम्हारे ध्यान में आयेगा कि मैंने यह क्यों किया। मंदिर बनाया तो

मुसलमान नहीं आते थे। मस्जिद बनाई तो हिंदू नहीं आते थे, लेकिन जब पाखाना बनाया तो सब आने लगे।"

इसलिए 'सेक्युलर स्टेट' (धर्मनिरपेक्ष राज्य) से बेहतर कुछ नहीं है। धर्मवालों ने आज इतने भेद बढ़ा रखे हैं कि धर्म साधक होने के बदले बाधक हो रहा है।

११२. सर्वसम्मति

मनु महाराज तपस्या कर रहे थे। प्रजा राज्य का कारोबार चलाती थी। लेकिन व्यवस्था अच्छी नहीं थी। लोग मनु के पास गये और प्रार्थना की कि आप राजा बन जायें।

मनु ने कहा, "मैं तपस्या कर रहा हूं। इसे छोड़कर राजा का काम करूंगा तो आपको मेरी सब बातें माननी होंगी। फिर कभी मत कहना कि हम इस बात को नहीं मानते।"

जब प्रजा ने कबूल किया तो मनु महाराज राजा बने।

समाज में ऐसे लोग होने चाहिए, जो चुनाव में न जायें। मनु को यह साठ और चालीस वाला मामला मंजूर नहीं था। उन्होंने कहा कि सब लोग चाहते हों तो हम आयेंगे, नहीं तो राम-नाम लेंगे। यानी मुझे 'सौ' में से 'सौ' का मत मिलना चाहिए, केवल 'बहुमत' से मैं राजा बनना नहीं चाहता।

११३. अंधा बहुमत

मुझे एक कहानी याद आती है। एक मां के चार अंधे लड़के थे। फिर उसके एक ऐसा लड़का हुआ, जिसके आंखें थीं। वह कहता था कि मुझे यह दीखता है, वह दीखता है।

मां ने सोचा कि इसका जरूर कुछ-न-कुछ बिगड़ा हुआ है। वह उसे डाक्टर के पास ले गई और डाक्टर से कहा, "मेरे लड़के का कुछ बिगड़ा हुआ है, क्योंकि वह कहता है कि मुझे कुछ दीखता है, सो इसे दुरुस्त कर दीजिये।"

डाक्टर ने उसका आपरेशन किया और उसको अच्छा कर दिया। तब मां ने और भाइयों ने सोचा कि वह ठीक हो गया, हमारे ही जैसा बन गया।

ऐसा किसलिए हुआ? क्योंकि 'बहुमत' अंधों का था। इस-लिए यह जो बहुमतवाला मामला है, सो बिलकल मैकेनिकल (यांत्रिक) है, इसमें अकल नहीं है।

११४. पूर्णमदः पूर्णमिदम्

एक दफा एक पिता और पुत्र खाने बैठे। पिता की थाली में मां ने एक पूरा लड्डू रखा और बच्चे की थाली में आधा। बच्चा रोने लगा; हठ करने लगा कि हमें पूरा ही लड्डू चाहिए।

मां कुशल थी। उसने एक छोटा-सा गोल लड्डू बनाया और बच्चे को परोस दिया। लड़का खुश हुआ। पिता को बड़ा लड्डू मिला और बच्चे को छोटा तो भी वह खुश हुआ,

क्योंकि उसे पूरा लड्डू मिल गया था।

इसका अर्थ यह हुआ कि बच्चा कहता है, "मेरा बाप जितना पूर्ण आत्मा है, उतना ही पूर्ण आत्मा मैं भी हूं। मैं छोटा हूं, पर टुकड़ा नहीं हूं।"

जो विश्व का राज होगा, वह बड़ा लड्डू होगा और गांव का राज छोटा लड्डू होगा। पर वह भी पूर्ण होना चाहिए। इसीलिए हम हमेशा कहते हैं—"पूर्णमदः पूर्ण—मिदम्।"

'मण्डल' से प्रकाशित

विनोबा-साहित्य

१ ईशावास्यवृत्ति
२. ईशावास्योपनिषद्
३. उपनिषदों का अध्ययन
४. गांधीजी को श्रद्धांजलि
५. जीवन और शिक्षण
६. भूदान-यज्ञ
७. राजघाट की संनिधि में
८. विचार-पोथी
९. विनोबा के विचार (तीन भाग)
१०. शांति-यात्रा
११. स्थितप्रज्ञ-दर्शन
१२. स्वराज्य-शास्त्र
१३. सर्वोदय-विचार
१४. सर्वोदय-संदेश
१५. विनोबा की बोध-कथाएं

दो रुपये